प्रेरणा-दीप

(ब्र. रवीन्द्र जी 'आत्मन्'-संस्मरण)

सम्पादक :

अनिल जैन, भिण्ड

श्री वर्द्धमान न्यास (पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट)

प्रेरणा-दीप

प्रकाशक :
श्री वर्द्धमान न्यास (पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट)
अमायन, भिण्ड (म.प्र.)-477227
मो. 9826225580

प्रथम संस्करण : 3000
18 जनवरी 2025 (प्रथम पुण्य स्मरण-ब्र.रवीन्द्र जी 'आत्मन्')

न्यौछावर राशि : 30/-

Prerna-Deep

Published by :
Vardhman Nyas
Amayan, Bhind (M.P.)

Edition : 3000
18th january, 2025
Price : Rs. 30/-

प्रकाशकीय

'संस्मरण' अर्थात् सम्यक् स्मरण।

यह दो शब्दों से मिलकर बना है। सम्+स्मरण इसका अर्थ है– किसी घटना, व्यक्ति या वस्तु का स्मृति के आधार पर कलात्मक वर्णन करना।

किसी व्यक्ति के अनुभवों के बारे में लिखी जाने वाली एक गैर– काल्पनिक कहानी है, यह आत्म कथात्मक लेखन का एक रूप है जो जीवन के किसी विशिष्ट काल खण्ड में उसके अतीत पर आधारित होती है, जिसमें भावनाओं और संवेदनाओं पर जोर दिया जाता है जबकि आत्मकथा पूरे जीवनकाल को संजोये रहती है। जब घटना लौकिक कामयावी से लोकोत्तर पथ प्रदर्शक हो, उसे शब्दों में लिखना अकल्पनीय है।

श्रद्धेय ब्र. जी की स्मारिका प्रकाशन का विकल्प उसी दिन से है जिस दिन कर से कर पृथक हुआ, आपके भावात्मक दृष्टिकोण को अन्तर से पृथक करने की शक्ति किसमें है ?

इस वसुधा को छोड़ बढ़े तुम,

भावों से कैसे जाओगे.... ?

स्मारिका मात्र उपकार/प्रशंसा/अभिनंदन की न रहकर आपके संपूर्ण जीवन वृतांत (आत्मकथा) तात्त्विक/ सामाजिक/ धार्मिक दृष्टिकोण/ साहित्यिक मूल्यांकन/ आचार्य एवं मूल ग्रंथों, आगम परम्परा को जो आत्मसात किया, उसे अपनी प्रयोजन परक

संक्षिप्त शैली में कथोपकथन/ लिपिबद्ध किया। रचनाएँ जिसमें आगम, अध्यात्म का समावेश है।

उपरोक्त विषय वस्तु विद्वत्जन व निकटस्थ साधर्मियों द्वारा अपेक्षित है, सांगोपांग लेखन के पश्चात् ही मूर्तरूप देने का भाव है। कुछ आत्मार्थी आपके व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व पर शोध करने की भावना रखते हैं, उनके यथा शक्ति सहयोग के लिए तत्पर हूँ। साधक जीवन पर खोज आत्मार्थी जीवों के लिए साधना का पथ आलोकित करेगी।

अनेक साधर्मी, ब्रह्मचारी भाई, बहिनों को तात्कालिक समय-समय पर दी जाने वाली प्रेरणा, अनौपचारिक वार्तालाप, द्वय-अर्थी संवाद, साहित्य में ऐसी चर्चायें-शब्द एक परन्तु जिसके अर्थ दो निकलते हैं, कई प्रसंगों में कई बार साधारण शब्द द्वारा सम्बोधन होने पर उसका भाव, अर्थ गहनता लिए होता था, जो जीवन निर्माण में सहभागी हुआ, भावों को अपनी-अपनी भाषा में लिखने का प्रयास किया है।

भावों को भावों से जोड़ना प्रयोजन है। भावों को एकत्रित कर दीपक की तरह जीवन प्रदीप में निमित्त बनें, इसी भावना से **'प्रेरणा-दीप'** प्रस्तुत है।

सभी सहयोगियों के हृदय से आभारी हैं।

-अखिल जैन

मंत्री, श्री वर्द्धमान न्यास, अमायन, भिण्ड (म.प्र.)

सम्पादकीय

'प्रेरणा-दीप' हर वह क्षण जो हृदय की गहराई को स्पर्शित करके दीपक की भाँति मार्ग आलोकित करे और जन-जन की प्रेरणा बनकर अपने अमूल्य होने का प्रतिभास कराये।

''संतों का जीवन मात्र प्रशंसनीय ही नहीं,अनुकरणीय भी है।'' उनके जीवन की प्रत्येक कही-अनकही वाणी हिताभिलाषी जीवों को नवीन ऊर्जा प्रदायी प्रेरणा बनकर पग-पग पर संबल देने वाली होती है।

श्रद्धेय ब्र. रवीन्द्र जी 'आत्मन्' के जीवन दर्शन से कुछ ऐसे ही प्रेरक प्रसंग लेकर अपने हृदय पटल पर संजोकर रखे, उनमें से कुछ संस्मरण पुष्प चुनकर आप सभी के हाथों में पहुँचाने का लघु प्रयास है।

यद्यपि उनके जीवन का हर क्षण ही संस्मरण है, जो लेखनी के वश की बात तो नहीं। वे तो हृदय के मोती हैं जो प्रति पल शीतलता प्रदान करते हैं।

इन संस्मरण को ध्यान पूर्वक पढ़ें और जीवन जीने की, विचार परिवर्तन की प्रेरणा लें। किसी भी प्रसंग को अन्यथा न लें। यदि एक प्रसंग भी हमारे जीवन को आलोकित करता है, वही इस पुस्तक की सार्थकता है।

ऐसे और भी अनेक मोती आप सभी के हृदय पटल पर अंकित हैं, उन्हें हमारे पास भेजें, जिससे आगामी अंक में उन्हें समाहित कर सकें।

हम आभारी हैं उन सभी भाग्यशाली जीवों के जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन में हृदय से जुड़कर इसे एक पुष्प रूप दिया और आप सभी के प्रति मंगल भावना है जो इसका अध्ययन कर अपना जीवन आलोकित करने के प्रति सजग हैं।

-अनिल जैन, भिण्ड

श्री वर्द्धमान न्यास, अमायन

अध्यक्ष की कलम से....✍

श्रद्धेय ब्र. जी से सर्व प्रथम मैं बानपुर में मिला, उस समय स्वाध्याय की विशेष रूचि नहीं थी परन्तु धर्म भावना, अंतरंग प्रेम था, अपनी काकी के साथ उनके कहने पर प्रवचन सुनने आया। आपको देखा, मिला, कोई अलग प्रकार की अनुभूति हुई जिसे शब्दों में वयां नहीं कर सकता, वहीं से मेरे जीवन में नया मोड़ आया। सद्भावों का एक दीप जला, ऐसी लौ लगी कि प्रत्येक सप्ताह मैं सागर से बानपुर आता पश्चात् ब्र.जी के साथ तीर्थक्षेत्रों की वंदना, सागर, गौरझामर प्रवास गोष्ठी का सौभाग्य मिला। सुधीर मामा व पंकज (बंटी भैया) के साथ ही प्राय: ब्र. जी के पास आना हुआ, उनकी भावनायें भी उत्तम थीं।

आपकी साधना भूमि अमायन में संचालित आत्मार्थी साधक जीवों का सदन, संस्कार हेतु बालक-बालिकाओं का छात्रावास/ विद्यालय/औषधालय/प्राकृतिक डिप्लोमा कोर्स,छात्रों की छात्रवृत्ति, साहित्य प्रकाशन आदि अनेकानेक गतिविधियाँ, जिनका बीजारोपण **श्रद्धेय ब्र. रवीन्द्र जी 'आत्मन्'** द्वारा किया गया जो निर्बाध रूप से संचालित हैं। स्थानीय व समस्त देश भर के मुमुक्षुओं का योगदान है।

बच्चों/आत्मार्थी जीवों हेतु शिविर, संगोष्ठी व आदरणीय ब्र. जी की शैली के त्यागी विद्वान तैयार हों, उन जैसा दृष्टिकोण गठित हो, उन्हीं सिद्धांत व भावना की पग डंडी पर बढ़ते रहने का प्रयास रहेगा।

-अभय कुमार जैन, सागर

अध्यक्ष, श्री वर्द्धमान न्यास, अमायन

समर्पित

वीर मार्ग के रहे प्रवर्तक, ज्ञान क्रिया से बोध दिया।
'दिया' मात्र जग तम को हरता, स्व-पर प्रकाशक आप किया।।
रवि सम किरणें फैली जग में, अंधकार टिक सका कहाँ।
शेष स्मृति बनी प्रेरणा, ज्यों रजनी में दीप शिखा।।
दर्पण सम था सहज समर्पण, जीवन अद्य जगत का दर्पण।
स्व-प्रतिबद्ध निषेधा जग को, कर सकता क्या तुमको अर्पण।।

.... कैसे थे वे पण्डित जी ?

बहुत दिनों से सोचा करता, कैसे थे वे पण्डित जी।
सुबह-सुबह सपनों में आकर, कुछ कह जाते पण्डित जी।।

नाम बहुत था पर सिमटे थे, छोटी सी एक बगिया थे।
नहीं थी आशा, नहीं अभिलाषा, निज धुन के ही धुनिया थे।।
कोलाहल से दूर किनारे, अध्ययन करते पण्डित जी।। 1।।

ज्ञान-ध्यान ही जिनका सब कुछ, वात्सल्य रस में भीगे थे।
एक बार उनको पढ़ लेता, उसको अपना कर लेते थे।।
कृत्रिम नहीं, बहुत सहज थे, बालकवत् थे पण्डित जी।। 2।।

ब्रह्मचर्य का तेज सूर्य सम, प्रभुवर भक्ति हृदय विराजे।
जो लिख जाए वही कविता है, फिर भी किंचित् अहं न आवे।।
आशु कवि थे, कवि शिरोमणि, प्रवचनकार बड़े पण्डित जी।। 3।।

रोज सबेरे जल्दी उठकर, जिन गुणगान रचाते थे।
स्वाध्याय, सामायिक करते, निज-गुण में रम जाते थे।।
मैंने इन नयनों से देखा, ध्यान लगाते पण्डित जी।। 4।।

अध्यातम के रसिक हृदय थे, स्वयं पुराण कहानी थे।
चरणानुयोग के अनुगामी, करणानुयोग श्रद्धानी थे।।
अनेकांत-स्याद्वाद समझते, नहीं पक्षधर पण्डित जी।। 5।।

कर्म उदय के विकट थपेड़े, रोगों की परवाह नहीं थी।
कर्म-कर्म में, ज्ञान-ज्ञान में, भोगों की भी चाह नहीं थी।।
कर्म नहीं दुख देते किंचित्, सुख सागर थे पण्डित जी।। 6।।

वीतरागता जिनको प्यारी, दया धर्म परिपालक थे।
दृढ़ सिद्धांत, अडिग निर्णयमय, शुद्धातम आराधक थे।।
जिनशासन की मर्यादा हित, बोध कराते पण्डित जी।। 7।।

आज समझ में आया मुझको, ऐसे थे वे पण्डित जी.....

1. असली जौहरी

सोनागिर सिद्धक्षेत्र की तलहटी में अगस्त 2007 में पर्वराज दशलक्षण पर्व सम्पन्न हुए। देश के अनेक स्थानों से जिज्ञासु, मुमुक्षुगण पू. पं.जी साहब के प्रवचन सुनने एवं तीर्थ क्षेत्र की वंदना हेतु पधारे।

शाम के समय पं. जी साहब के समीप एक मुमुक्षु आये, उनका परिचय कराते हुए एक साधर्मी बोले–ये मुंबई से पधारे हैं। हीरे के व्यापारी हैं, मुंबई में एक बड़ा शो रूम है।

पं. जी साहब ने बैठने का इशारा किया और बोले–असली हीरे का व्यापार करते हैं या नकली का ? हीरे की कुछ परख भी है या नहीं ?

भाई हाथ जोड़कर–असली हीरे का ही व्यापार है, परख भी कर लेता हूँ।

पं. जी सा.–**संयोग–माटी है, संयोगी भाव–लोहा है, सिद्धत्व के साधन–चाँदी है, सिद्धत्व–सोना है और स्वभाव–हीरा है।**

पाँच भावों में स्वभाव (पारिणामिक भाव) वह हीरा है।

कमाना मजबूरी है, दान करना जरूरी है, त्याग धर्म है।

निर्धन वह नहीं, जिसके पास धन नहीं, निर्धन वह है जो अपने अमूल्य चेतन हीरे को नहीं पहिचानता।

स्वाध्याय करते हो –जी कभी–कभी।

दो चार पेज पढ़ना भी स्वाध्याय है, याद करना भी स्वाध्याय है लेकिन वह अधिक कार्यकारी नहीं।

बैठ जाओ, जो पढ़ा, उसे विचार करो, क्या लिखा है ? उसका अपनी परिणति से मिलान करो। उससे बहुत लाभ होगा।

स्वाध्याय बहुत जरुरी है तब असली हीरे के पारखी बनोगे। वह भाई चरणों में नतमस्तक थे।

बोले–गुरुजी ! आज आपने मुझे हीरे और कंकड़ की परख सिखा दी। मैं आज तक अपने को जौहरी समझ रहा था परन्तु असली जौहरी तो आप हैं जो असली हीरे की परख करते हैं। मैं तो कंकड़ को ही हीरा समझकर अहंकारी हो रहा था।

2. सब कुछ पूरा

पं. जी साहब के सानिध्य में श्री ज्ञानानंद श्रावकाचार जी ग्रन्थ में से पाँच महाव्रतादि 28 मूलगुणों के धारक, निज स्वभाव के साधक, परम दिगम्बर परमोपकारी मुनिराज के स्वरूप का स्वाध्याय कर रहे थे। कुछ पंक्तियाँ वांचने के बाद पं. जी साहब उसका मर्म समझाते थे। रात्रि के लगभग 11 बज गये। 10–12 पंक्तियाँ शेष रह गई थी। एक भाई बोले अब पूरा करो। पं. जी साहब बोले–भाई ! पूरा करो नहीं, पूरा देखो, पूरा समझो। एक–एक पंक्ति पूरी है, एक–एक पंक्ति में विचार करो कि इसमें मेरा क्या ? मेरे लिए क्या ? एक–एक अक्षर

पूरा है, एक-एक शब्द पूरा है, एक-एक पंक्ति, पैराग्राफ, प्रकरण सब पूरा है। जैसे एक-एक शरीर पूरा, अंग पूरा, हाथ पूरा, एक अंगुली पूरी, एक पोरा पूरा, एक परमाणु भी पूरा है। दो खण्ड मिलकर कभी अखण्ड नहीं होते, दो दुखी मिलकर कभी सुखी नहीं हो सकते।

विवाह क्या है? दो दुखी मिलकर सुखी होने की मिथ्या कल्पना है। दोनों दुखी हैं और मिलकर सुखी होना चाहते हैं, जो असंभव है। आत्मा अकेला है लेकिन अधूरा नहीं।

3. मृत्यु को महोत्सव मनाओ

समाज के एक बुजुर्ग के देह विलय के प्रसंग पर पूज्य पं. जी साहब का उद्बोधन हुआ-

'इस शरीर में जीव को इतने समय रहना था सो अब शरीर की आयु पूर्ण हो गई जिसे सब लोग मरण कहते हैं। आयु क्षय की स्थिति अज्ञानी के लिए शोक का प्रसंग है, ज्ञानी के लिए वैराग्य का लोग कहते है कि सब छोड़कर चले गये। अरे भाई ! छोड़ नहीं गये, छूट गया। छूटने में कल्याण नहीं है, छोड़ने में कल्याण है। छूटेगा तो अवश्य ही। कैसे छूटे यह विचार करो। घर से तो सभी को निकलना है परन्तु कैसे निकलना है। खड़े-खड़े या पड़े-पड़े- यह विचार कर निर्णय करो।'

एक सेठ जी मरण शैय्या पर लेटे थे, कंठ अवरुद्ध हो गया था। समस्त परिवार जन समीपस्थ थे। एक सज्जन बोले-सेठ जी! समय निकट है, अब तो कुछ दान कर लो।

सेठ जी ने दीवालों की ओर इशारा किया (कि इसमें जो दबा हुआ है, सो दान का हिस्सा है।)

लड़के बोले–पिताजी कह रहे हैं कि सब दीवालों में लगा दिया अब दान के लिए बचा ही नहीं है।

अरे भाई ! जब तक इन्द्रियाँ शिथिल नहीं हुई तब तक जो कर सको सो कर लो, अंत समय तो पछतावा ही शेष रह जाता है।

''जौलों न रोग जरा गहे, तौलों झटति निज हित करो।''

भाई ! बच्चों को भी बचपन में ज्ञानाभ्यास के संस्कार दो। अन्यथा वे क्या सेवा करेंगे। अर्थ का अनर्थ ही करेंगे। आपको अस्पताल में भर्ती करा देंगे। सेवा के नाम पर एक नौकर रख देंगे। अरे ! सेवा माने क्या ? मनुष्य को मनुष्य समझना ही सेवा है।

एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय भी जीव हैं, उन्हें भी जीव समझो।

मृत्यु को भय से मत देखो, समाधि की तैयारी करो।

मृत्यु का भी महोत्सव मनाओ।

4. न्याय करो

दिनांक 10 फरवरी 2005, गौरझामर प्रवास पर थे, वापिसी का विकल्प था। एक नवयुवक चरण स्पर्शते हुए बोले–मुझे दमोह जाना है, सुना कि आप आज जा रहे हैं, वापिस आने पर मुझे न मिलेंगे सो चला आया।

एक भैया परिचय कराते हुए बोले–पं. जी साहब! ये कभी मंदिर नहीं जाते थे, आपके आगमन से प्रवचन सुनना प्रारंभ किया और नियमित समय पर आये। साथ ही एल.एल.बी. (बकालात) कर रहे हैं।

पं. जी साहब बोले–भैया ! न्याय करो... अपने प्रति।

‘न्याय करो’ यह तो ठीक परन्तु ‘अपने प्रति’ इसका क्या रहस्य है?

तब बोले–यह भव, भव के अभाव के लिए है। अपने भव के अभाव का पुरुषार्थ करो। यदि नहीं करते हो तो यह अपने प्रति अन्याय है।

समय की विराधना अन्याय है। अवसर मिला है, सदुपयोग करो। अवसर चूकना योग्य नहीं है।

देश के प्रति भी अन्याय न करो, जनता के प्रति भी अन्याय न करो, धर्म के प्रति अन्याय न करो और अपने प्रति भी अन्याय न करो।

किसी को भी क्रोध की दृष्टि से मत देखो, मान की दृष्टि से मत देखो, वासना की दृष्टि से मत देखो।

आत्महित को छोड़कर अन्य कार्यों में लगना अपने प्रति अन्याय है।

पर द्रव्य अपना नहीं हो सकता, उसे अपना मानना अन्याय है।

अपने आत्मा को अनादि-निधन नहीं मानते, यह अन्याय है।

कोई आपके पास विश्वास लेकर आया और आप विश्वासघात करते हैं, यह अन्याय है।

पर से सुख की कल्पना करते हैं अन्याय है। जो ज्ञान, ज्ञान की आराधना के लिए है, उसे अपने मान पोषण में लगाते हैं, अन्याय है। जो धन दान-परोपकार के लिए है, उसे विषय-व्यसनों में लगाना अन्याय है।

ऐसे ही सर्वत्र विचार करना और अन्याय को छोड़कर न्याय के मार्ग पर चलते हुए निज कल्याण में सावधान रहना।

5. निष्काम भक्ति

'बड़े लोगों की बड़ी बातें' मुहावरा बहुत सुना था, आज देखने को मिला और जिनके हृदय में भगवान की भक्ति है, बहुमान है, वे छोटी-छोटी बातों के लिए भगवान को बीच में नहीं लाते।

27 दिन के लंघन हो गये, अन्न का एक दाना मुँह में नहीं गया। बाबूजी बोले-मैं आपके सामने बैठकर जप करना चाहता हूँ। उसमें कोई व्यंतर अथवा कुदेवादिक की मान्यता नहीं है, मात्र णमोकार मंत्र का जप करना है।

पं.जी- भैया! जप करना है, बड़े शौक से करो, प्रसन्नता से करो परन्तु इस शरीर के लिए नहीं, स्व-पर के कल्याण के लिए करो। जग में शान्ति के लिए करो। इस शरीर के लिए कुछ नहीं करना है। वह तो इतनी शक्ति नहीं है इसलिए इलाज (शुद्ध काष्ठादिक औषधि मात्र का) चल रहा है अन्यथा भावना तो निर्ग्रन्थता की है।

शरीर में रोग हो गया है, इस छोटे से कार्य के लिए निदान पूर्वक भगवान की भक्ति क्यों? भव रोग के नाश के लिए भगवान की भक्ति करो, जप करो। बड़ों का बड़े काम के लिए सदुपयोग करो।

शरीर तो आयु जब तक है तब तक रहेगा ही, उसमें मंत्र, तंत्र, औषधि क्या करेंगे? इसलिए आप तो निष्काम भक्ति करो। शरीर की चिंता छोड़ो। उन्होंने उस कमरे में जप नहीं करने दिया।

6. भोजन भी संयम के हेतु

पूज्य पं. जी साहब चर्चा कर रहे थे तभी चाची जी चौका लगाने हेतु आयीं, उन्होंने पूछा–पं. जी साहब ! क्या बना लें ?

पं. जी–जो साधना, संयम और स्वास्थ्य के अनुकूल हो सो बना लो और क्या पकवान बनने हैं ?

अरे ! 'भोजन भी संयम के हेतु।' जिसमें आसक्ति भी न हो, संक्लेश भी न हो, अधिक आडम्बर भी न फैले और अधिक समय भी बर्बाद न हो। कुल मिलाकर हमारी, तुम्हारी, सबकी साधना और संयम के हित में हो।

सारा दिन खाने, बनाने, खिलाने में नहीं जाना चाहिए। एक नियम बना लो–बार–बार नहीं खायेंगे और एक बार में भी अधिक वस्तुएँ नहीं खायेंगे। (पं. जी साहब एक बार में छह से अधिक वस्तुएँ थाली में नहीं रखवाते थे।)

देखो भाई ! हमारा तन,मन,धन,समय, शक्ति, ज्ञान यहाँ तक कि कषाय भी साधना और संयम के लिए है और हम क्या कहें ?

अहो ! जिनके मुख कमल से निकलने वाले शब्द भी पवित्रता को प्राप्त हो जाते हैं, जिनके मानस पटल पर चलने वाले विचार एवं उन विचारों में आने वाले शब्द, अक्षर भी अपना अहो भाग्य समझते हैं, ऐसे ज्ञानी जनों को कोटि–कोटि वंदन हो।

धन्य है आपका चिन्तन। हमें भी ऐसी शक्ति दें कि यह चिन्तन अविस्मरणीय हो जाए। जन–जन के हृदय पर राज करे।

7. विद्यार्थी बनो

मौ प्रवास के समय एक साधर्मी बोले–पं.जी अब तो निवृत्ति लेना है। इन प्रपंचों से कब छूटें क्योंकि इनमें फंसकर आराधना तो दूर स्वाध्याय भी अच्छे से नहीं हो पाता है, इसलिए सोचता हूँ कि शीघ्र से शीघ्र इन प्रपंचों को समेटकर आपके सानिध्य में आराधना करें।

पं. जी बोले–पाँच साल के लिए विद्यार्थी बन जाओ।

समझा नहीं ?

निवृत्ति लेकर यह नहीं हो कि अब घर–दुकान से छुट्टी मिल गई सो अब देर तक सोते रहें, इधर–उधर बैठें, कुछ रूढ़ि की क्रियायें कर लीं और समय काटने लगे। प्रमाद से समय गंवायें इसका नाम आराधना नहीं। त्याग के नाम पर गरिष्ठ भोजन करने लगे, प्रदर्शन करें, पर से अपेक्षायें रखें, पूरी न होने पर दूसरों को दोष दें अथवा कोई समिति, ट्रस्ट आदि बनाकर बड़ी–बड़ी योजनाओं,बड़े–बड़े कार्यक्रमों में फंस गये–इसका नाम निवृत्ति नहीं।

अरे ! निवृत्ति माने अज्ञान मिटे, विषय–कषाय मिटे। स्वतंत्र हो जाए, पराश्रय की दृष्टि मिट जाए।

बाहर में विद्यार्थी की तरह लगन से, जिज्ञासा, उत्साह से अध्ययन करें, भेदज्ञान करें, वैराग्य बढ़ायें। दुकान से, घर से हट गये तो अब पंचकल्याणक, विधान में, मान–सम्मान में नहीं फंस जाना, अब अपने घर–दुकान को देखना; इसलिए पाँच साल के लिए विद्यार्थी बन जाओ। एक ही सूत्र है–विद्यार्थी बनो, कल्याण करो।

काक चेष्टा वको ध्यानम्, श्वान निद्रा तथैव च।

अल्पाहारी गृहत्यागी, विद्यार्थी पंच लक्षणम्।।

8. आत्मा परम सरस है

सन् 1983, अमायन की दोपहरी, डॉ. वीरसागर जी पर्यूषण पर्व में मौ प्रवचनार्थ आये थे पश्चात् पं. जी साहब के पास अमायन पहुँचे। पं. जी साहब ने चर्चा उपरान्त उनसे पूछा–आज सुबह क्या चलाया ?

डॉ. वीरसागर जी–समयसार जी चलाया।

पं. जी–समयसार जी में क्या चलाया ?

डॉ. वीरसागर जी– 49 वीं गाथा चलाई ।

पं. जी–गाथा में क्या सुनाया ?

डॉ. वीरसागर जी–आत्मा अरस है।

पं. जी साहब बोले–'आत्मा अरस है ?' यदि आत्मा अरस हो तो निर्ग्रन्थ मुनिराजों का जीवन सरस कैसे ? फिर उन्हें किसका रस आता है ? भाई ! आत्मा को अरस तो पुद्‌गल अपेक्षा से कहा है, आत्मा तो परम सरस है। जो उसमें लीन हुए उनको अनंतकाल बाहर आने की इच्छा नहीं होती।

अनुभौ के रस को रसायन कहत जग....

उन्हें भी लगा, बात तो सत्य है। वे आश्चर्यचकित होकर उनकी मुख मुद्रा की ओर निहारते रहे।

जब वे वापस पहुँचे तो उनके गुरु ने पूछा–कहो पर्यूषण कैसे बीते। तब उन्होंने पूरी स्थिति से अवगत कराया। उनके गुरु बोले– बेटा ! चाहे चने चबाकर रह लेना, फुटपाथ पर सो जाना परन्तु ऐसे गुरु के चरणों को मत छोड़ना।

'जो आत्मा को परम सरस बताये वही हितैषी है।'

9. आत्मा की सेवा

उस दिन मिलने वालों का बहुत आना-जाना रहा, जिससे बहुत थकान हो गई थी। मैंने कहा-थकान बहुत है, थोड़ा सा तेल लेकर मालिश कर देते हैं, नींद आ जावेगी।

बोले-थकान तो है, सेवा करो लेकिन हमें अकेला छोड़ दो।

आपको अकेला छोड़ दें फिर सेवा किसकी करेंगे ?

बोले-तुम शरीर की सेवा करो, हम आत्मा की सेवा करें तब तो सेवा सार्थक है अन्यथा तो बस... !

यह शरीर संयम, समाधि के लिए है। संयम, समाधि के लिए ही सेवा होना चाहिए।

तुम अपना काम करो, हमें अपना काम करने दो। हम तो समयसार जी की गाथाओं का चिंतन कर रहे हैं। 'यह देह मेरी नहीं, आत्मा ही सर्वत्र सुदंर है।'

तुम बीच-बीच में मुझे टोकना नहीं।

आप अपने कार्य में लग गये, मैंने अपना कार्य शुरु कर दिया।

10. अधकचरा जीवन

आधुनिक परिवेश में रहने पर मजबूरी वश कभी-कभी आधुनिक सुविधायें आवश्यक सी प्रतीत होती हैं।

एक दिन अति आवश्यक कार्य हेतु फोन करना था और फोन की लाइन खराब थी; अतः अभय जी सागर से मोबाइल लेकर छत पर चढ़ आया, वहाँ कुछ कचरा फैला हुआ था। मुझे ढूँढ़ते हुए आ.पं. जी साहब एवं भाईसाहब भी छत पर आ पहुँचे।

कचरे को देखकर पं. जी साहब बोले–बहुत गंदगी पड़ी है, इसकी सफाई करा लेना। यदि कहीं पानी पड़ गया तो बहुत जीवों की हिंसा होगी।

वास्तव में तुम लोगों का जीवन ही अधकचरा है, यत्नाचार विवेक तो है ही नहीं!

भाई सा.–अधकचरा जीवन कैसा ?

पं.जी–भोगों और स्वच्छंदता का जीवन पूरा कचरा है।

विवेक और संयम रहित जीवन अधकचरा है।

ज्ञान–वैराग्य पूर्वक संयम का जीवन साफ सुथरा है।

पहले तो सुनकर हंसी आई, फिर विचार किया कि वास्तव में जैसे कचरे से कमरा (स्थान) गंदा रहता है, उसकी सफाई न करने पर गंदगी दिनोंदिन बड़ती ही जाती है, इसीप्रकार इस कचरे से हमारा जीवन भी मलिन हो रहा है, यह मलिनता ज्ञान–वैराग्य पूर्वक संयम धारण करने से ही मिटेगी अन्यथा इसमें प्रमाद एवं कषायों के कूढ़े का ढेर लग जायगा।

11. न्याय से कमाओ

एक भाई पं. जी साहब के समीप आये।

पं. जी साहब ने पूछा–कहो भाई क्या हाल है ? अब तो मंदिर, स्वाध्याय में भी दिखाई नहीं देते ? कहाँ रहते हो ?

ऐसे ही हैं पं. जी। सारा व्यापार बंद हो गया। अब तो दुकान भी नहीं चलती। कुछ समझ में नहीं आता।

पं.जी–तुम दुकान चलाना भी तो नहीं जानते फिर कहते हो दुकान चलती नहीं। दुकान के क्या पैर लगे हैं। अरे दुकान (व्यापार) चलती है–पुण्य से, प्रमाणिकता से, सद् व्यवहार से।

सो तुम पुण्य करना नहीं चाहते, प्रमाणिकता तुम्हारी है नहीं। बात–बात पर लड़ना–झगड़ना, कषाय करना। अब तुम्हीं बताओ दुकान कहाँ से चले ? यदि पुण्य नहीं करोगे तो मेहनत कर–करके मर जाना फिर भी नहीं कमा पाओगे।

पुण्य होता है भगवान की भक्ति से, पूजा, दान स्वाध्याय संयम के परिणामों से।

बहुत छल कपट से कमाना चाहो फिर भी उदय से ज्यादा एक छदाम नहीं मिलेगी और न्याय–नीति, संतोष से कमाओ तो भी जितना उदय में है, उतनी मिले बिना नहीं रहेगी, इसलिए **न्याय से कमाओ, विवेक से खर्च करो, संतोष से रहो।**

नियत दिनचर्या बनाओ। पूजा, पाठ, स्वाध्याय से जुड़ो, सब ठीक हो जाएगा।

12. अपनों से सावधान

सोनागिर गोष्ठी का आयोजन था। अमायन से रवाना हुए। मार्ग में चलते हुए आगे एक ट्रक पर लिखा था–'अपनों से सावधान' मैंने पढ़ा तो पं. जी साहब ने पूछा–क्या अर्थ है ?

मैंने कहा–समझ नहीं आया।

बोले–अपनों से सावधान का अर्थ है–अपने से दिखने वाले, सभी अपने नहीं होते।

जिन्हें हम अपना मानते हैं, वे अपने नहीं, अपना भुलाने वाले हैं। अपना घर–ये घर अपना नहीं है, अपना घर भुलाने वाला घर है। अपनी स्त्री, अपना पुत्र, अपने माता–पिता–ये सब अपना भुलाने वाले हैं। अपना तो एक शुद्धात्मा है। बताओ इनमें से कोई शुद्धात्मा की याद दिलाता है या हम इनके मोह में शुद्धात्मा को भूल जाते हैं।

फिर बोले–पं. जी से सावधान।

मैंने कहा–इसका क्या मतलब हुआ ?

इनके सानिध्य में तत्त्वज्ञान की कला सीख लो अन्यथा ये लौटकर नहीं आयेंगे फिर पछतावा मात्र शेष रह जाएगा, दुख रह जाएगा और पछताने से भी अवसर तो चला जाएगा।

इसलिए अपने से लगने वालों से सावधान होकर अपना जो शुद्धात्मा है, उसकी ओर सावधान हो, उसमें अपनत्व कर लो।

13. सबसे अधिक ठण्डक

ग्रीष्म ऋतु का मौसम, गर्मी अपना प्रचण्ड रूप दिखा रही थी। मैं सायंकाल के भोजन पश्चात् जब आदरणीय पण्डित जी सा. के पास आया तब पं. जी छत पर ही टहल रहे थे, मैं भी उन्हीं के पास पहुँच गया। पं. जी बोले–तुम एक प्रश्न का जबाव दो तो मैं तुम्हें ईनाम दूँ।

मैंने पूछा–क्या ? पं. जी ने प्रश्न पूछते हुए कहा कि–सबसे अधिक ठण्डक कहाँ है ? तलघर में, गेलरी में या कमरे में ?

मैं बोला–तलघर में, जहाँ दिन में भी ठण्डक रहती है।

पण्डित जी बोले–गलत। सबसे अधिक ठण्डक है–भगवान के चरणों में भगवान की भक्ति में लीन हो जाएँ तो सर्दी–गर्मी का विकल्प ही न रहे।

मैंने कहा–उससे भी अधिक ठण्डक है गुरु चरणों में। जहाँ कषायों की अग्नि पर तुरन्त प्रहार होता है अन्यथा हमें अग्नि, अग्नि ही नहीं लगती।

सच है ज्ञानियों की दृष्टि बाहर देखते–देखते कब अन्तर्मुख हो जाए यह तो ज्ञानी ही जानते हैं। तीर्थंकर मेघ रचना को देखते ही देखते कब वैराग्यमय हो जाते हैं, इसमें क्या संदेह ?

14. निकासी

उस दिन चौके में बर्तन अधिक न होने से मैंने कहा– पं. जी आज बर्तन मैं ही साफ कर देता हूँ और मैं बर्तनों को साफ करने लगा कि तभी बैण्ड–बाजों की आवाज सुनाई दी, देखने पर ज्ञात हुआ कि कोई दूल्हे राजा निकासी के लिए मंदिर जी आ रहे हैं। पं. जी बोले– बताओ ! निकासी किसलिए की जाती है ? मैंने प्रश्न वाचक मुद्रा में देखते हुए पूछा–किसलिए ?

उत्तर में उन्होंने कहा–भोगों के गहरे एवं अंधे कूप में गिरने से पूर्व एक अवसर मिलता है कि भगवान को देख लो, जगत में एक मात्र ये ही सुखी हैं और ये भोगों को छोड़कर सुखी हुए हैं। यदि तुम्हें भी सुखी होना है तो इनका ही अनुसरण करो। अभी तेरे पास समय है, चेत जाओ ! चेत जाओ !! यदि अभी नहीं चेता तो तेरी तू जान।

इसीप्रकार शादी होने के बाद सबसे पहले दूल्हा-दुल्हन को मंदिर जी लेकर जाते हैं, उसके बाद गृह प्रवेश होता है। उसका भी अर्थ यही है कि अभी भी अवसर है, यदि इन विषयों का रस लग गया तो निवृत्ति मुश्किल हो जायेगी। भगवान की मुद्रा देखकर सुखी होने का सच्चा पुरुषार्थ कर लो।

अरे रे ! विषयों के वश होकर जीव कितना अंधा, बहरा हो जाता है कि भगवान द्वारा प्राप्त सन्मार्ग, सदुपदेश दिखाई, सुनाई नहीं पड़ता।

15. सुख कहाँ ?

हर वह शाम मेरे लिए सुखदाई है जब मुझे आदरणीय पं. जी सा. की सेवा का किंचित् भी अवसर प्राप्त होता और हर वह शाम दुखदाई जब मैं पं. जी से दूर होता।

ऐसी ही एक शाम मैं पं. जी सा. के सानिध्य में बैठा था तब पं. जी बोले- बताओ ! स्त्री सुख देती है या पुरुष ? मैं कुछ न बोल सका क्योंकि मैं स्वयं नहीं समझ पा रहा था कि सुख स्त्री से या पुरुष से ? तब परम आदरणीय पं. जी सा. बोले-

स्त्री सुख के लिए पुरुष की ओर देखती है और पुरुष सुख के लिए स्त्री की ओर देखता है फिर भी दोनों ही दुःखी हैं। यदि दोनों अपनी-अपनी ओर देखने लगें तो दोनों ही सुखी हो जाएँ।

सुख तो अपनी सम्पत्ति है, इसमें दूसरे का हस्तक्षेप कहाँ संभव है ? स्वयं सिद्ध वस्तु की प्राप्ति के लिए दूसरे से क्या अपेक्षा करना ?

16. एक दीप अपने घर में भी

दीपावली का पावन दिवस भगवान महावीर स्वामी के निर्वाणोत्सव की मंगल संध्या। जिसप्रकार नभ में तारागण टिमटिमा रहे थे, उसीप्रकार घरों में दीप मालायें जगमगा रहीं थीं। प्रवचन के पश्चात् हम लोग पं. जी के नजदीक बैठे थे तब पं. जी सा. बोले– जाओ भाई ! दिवाली मनानी होगी।

तब साथी बोले–हम तो दीपक जलाते ही नहीं, परिवार वाले जो करें सो करें।

पं. जी बोले–'भैया ! एक दीपक तो अपने घर में जला लो।'

साथी बोले–मैं तो जलाता ही नहीं।

पं. जी ने कहा–अरे भाई ! इस अग्नि के दीपक की अनुमोदना मैं क्यों करूँगा ? मैंने तो अपने घर में दीप जलाने को कहा। अपने घर में सम्यक्ज्ञान का दीप जलाने को कहा। अपने घर में सम्यक्ज्ञान का दीप जले तो मिथ्यात्व का गहन अंधकार क्षण में विनश जाये तब कुछ काम बने। मिट्टी के दीपों से दीवाली तो अनेकों बार मनायी, बहुत से दीप जलाये पर सम्यक्ज्ञान का दीप नहीं जला। अब सम्यक्ज्ञान का दीप जले तो दीवाली सार्थक है।

वास्तव में ज्ञानी के मुखारविन्द से निकला एक-एक शब्द भी अनमोल एवं अद्भुत रहस्यमय होता है, जो सामान्यजन के लिए कल्पनातीत है। हमारा जीवन भी मिथ्यात्व की अंधियारी से रहित और सम्यक्त्व के दीप से आलोकित हो, वही सच्ची दीवाली है।

17. अंगूठे का दर्द

दीपावली के पश्चात् कार्तिक माह के अष्टान्हिका पर्व आरम्भ होने वाले थे। सागर से अभय कुमार जी भी आए हुए थे। ऐसा विचार किया कि अष्टान्हिका पर्व किसी तीर्थक्षेत्र पर मनायेंगे। इसप्रकार नैनागिरि, द्रोणगिरि आदि क्षेत्र की यात्रा का विकल्पात्मक कार्यक्रम बनाकर भिण्ड से प्रस्थान किया। दस घण्टे की लम्बी यात्रा के पश्चात् रात्रि में जब सागर पहुँचे तो सफर की थकान इतनी हो गई थी कि यात्रा को अविरोध रखने का भाव नहीं हुआ तथा एक दिन बाद ही अष्टान्हिका पर्व भी आरंभ हो रहे थे, अतः पं. जी सा. के सानिध्य में सागर में ही पर्व पूर्ण करने का निर्णय हुआ।

जिस दिन से हमने यात्रा के लिए सफर आरंभ किया उसी दिन से मेरे बायें हाथ के अंगुष्ठ में किसी रोग ने अपनी अगवानी की सूचना दे दी थी। जिस रात हम सागर पहुँचे उस रात्रि में अंगूठे में इतना दर्द हुआ कि लगभग रात्रि को एक या दो बजे तक नींद ने नेत्रों को स्पर्श भी नहीं किया। प्रातः जब पं. जी सा. के कोमल वचनों से निद्रा भंग हुई तो उन्होंने पूछा कि दर्द में आराम है या नहीं ? मैंने कहा– रात भर चैन नहीं मिला। तब उन्होंने कहा–कैसा चैन नहीं मिला ? कोई दृष्टांत देकर बताओ ? मैं स्तब्ध सा सोचता रहा, तब उन्होंने कहा कि–

जैसे सम्यग्दृष्टि को आत्मानुभव के बिना चैन नहीं पड़ता ऐसा। सरल हृदयी पं. जी सा. के ये वचन सुनकर सभी लोग प्रसन्न

हुए, पश्चात् दैनिक कार्यों में उलझ गये। ज्यों-ज्यों समय बढ़ रहा था त्यों-त्यों रोग और दर्द बढ़ रहा था। अगले दिन अष्टमी होने से उस दिन भी कोई इलाज आरंभ नहीं किया। दो दिन बाद हाथ का ऑपरेशन हुआ। पं. जी सा. ने जानकारी मांगी तो बताया कि ऑपरेशन हो गया है, अभी अचेत अवस्था में है एवं डॉ.ने बेहोश करने के 520/- लिए। उस समय पं. जी सा. के मुखारविन्द से निकले हुए शब्द बहुत ही गम्भीर एवं चिंतन परक थे कि-

'अरे! डॉ. को इतने रुपये देने की क्या आवश्यकता थी? दो चॉटे में बेहोश हो जाते, दो बातों में होश में आ जाते।'

यह बात किसी की भी समझ में नहीं आई तब पं. जी सा. बोले-**विषयों के दो चॉटों में जीव बेहोश हो जाता है और गुरु के द्वारा दी गईं ज्ञान की दो बातों में जीव सचेत हो जाता है।** अहा! वास्तव में ज्ञानी के द्वारा कथित प्रत्येक वाक्य भेदज्ञान परक, रहस्यमय एवं गंभीर होता है।

18. सहयोग

बात उस दिन की है, शाम को भोजनोपरान्त आ.पं. जी साहब और मैं 'श्री शान्तिनाथ जिनालय' की ओर जा रहे थे। कीचड़ के कारण मार्ग बहुत खराब था। उधर से एक वृद्ध चार पहिए का हाथ ठेला (जिस पर सामान लदा था) लिए आ रहे थे, तभी उनका ठेला कीचड़ के गड्डे में फंस गया। अपनी शक्ति को एकत्रित कर वृद्ध ने

पुरजोर कोशिश की किन्तु इन्द्रियों की क्षीणता ने आड़े आकर असफल रहने पर मजबूर कर दिया। नजदीक पहुँचने पर मैंने एवं स्वयं पं. जी साहब ने हाथ लगाकर सहयोग की भावना दर्शायी और कार्य सफल हो गया। उपकार अमूल्य होता है फिर भी भावना की अभिव्यक्ति होना ही चाहिए। वृद्ध–राम–राम कहकर चले गये।

उनके जाने के बाद पं. जी साहब ने कहा–अपना क्या गया? अपने दो मिनिट के समय में किसी का भला हो गया, वह परेशानी से मुक्त हो गया, ऐसा करने से हम कोई छोटे नहीं हो गये, कार्य कोई छोटा–बड़ा नहीं होता।

'छोटे–बड़े की भावना ही मान का आधार है। समानता की भावना ही वात्सल्य का आधार है।' अतः ऐसे अवसरों को कभी नहीं चूकना चाहिए, इनसे मन को भी शांति मिलती है।

19. मितव्ययिता

मैं और सुनील भैया पं. जी साहब के समीपस्थ चर्चा कर रहे थे। कुछ देर पश्चात् पं. जी साहब ने कहा–अब कोई पाठ कर लो और वे लघुशंका निवारणार्थ कमरे से बाहर निकल गये। तब तक हमने बल्ब जला दिया था। पं जी साहब आकर बोले–इतनी देर पाठ नहीं किया तब तक छोटा बल्ब ही जला लेते, बिजली बर्बाद होती है। एक तो मंदिर का रुपया खर्च होता है, दूसरे जीवों की हिंसा होती है तथा इतनी देर जो बिजली की बचत होती वह किसी के काम आती।

पं. गोपालदास वरैया जी को विद्यालय में जब अपना व्यक्तिगत कार्य करना होता तब वे शासकीय दीप बुझाकर स्वयं का दीपक जला लेते थे।

हमें अपनी गलती का एहसास हुआ। सत्य है–जीवदया के भाव बिना हमारे परिणाम निर्मल कैसे हों ?

20. व्यवस्था

दोपहर का समय था, आ. पं. जी एवं अखिल भैया परस्पर चर्चा कर रहे थे कि जो निवृत्ति से रहना चाहते हैं उनकी व्यवस्था किस प्रकार बने ? वे सब एक साथ किस प्रकार और कहाँ रहें ? कोई स्थान ही दिखाई नहीं देता। उस समय परम आ. पं. जी के मुख से जो वचन प्रस्फुटित हुए वे मोक्षमार्ग के आराधक जीवों को आराधना में दृढ़ रहने के लिए उसी प्रकार सहायी हैं, जैसे किसी डूबते हुए प्राणी को सहारा मिल जाने पर वह डूबने से बच जाता है। पं. जी बोले–

''हमारे आचार्य हमें निर्ग्रन्थ मार्ग बताकर गये हैं, उन्होंने अपने शिष्यों के लिए आश्रम या फंड नहीं बनाया।

कोई यदि न पूछे तो बाजार से थोड़े फल लाकर खा लो और स्वाध्याय करो। यह तो कोई व्यवस्था नहीं कि हम अपने भोजन की व्यवस्था में ही लगे रहें। हम आदीश्वर भगवान के अनुयायी हैं। शिष्यों में ऐसे संस्कार हों कि यदि दिनभर भी कोई न पूछे, खाने को

कुछ न मिले फिर भी चेहरे पर मलिनता न आ पाये, मन मलिन न होने पाये, निशंक होकर आराधना में लगे रहो। आदीश्वर स्वामी एक वर्ष तक बिना खाये-पिये आत्म साधना में रत रहे। कोई भी विकल्प उन्हें आराधना से च्युत करने में समर्थ नहीं था और हम भी उनके ही अनुयायी हैं तो हमें भी आराधना से कौन डिगा सकता है? ऐसी सामर्थ्य किसी में नहीं। ऐसा हमारा अलौकिक धर्म है।

सत्य ही है-इसे समझने से हमारा जीवन निशंक और निर्भय हो जावेगा। विकल्प तो आकुलता के ही कारण हैं और तृष्णा को जीत लेने पर विकल्पों की आकुलता को अवकाश कहाँ? वीरों का मार्ग है, जिसका फल भी ध्रुव, अचल और अनुपम ही होता है।

बाकी बड़ेजनों का वात्सल्य है कि बच्चों के भविष्य का विकल्प आये बिना नहीं रहता।

''स्वावलंबी बनो, निरपेक्ष रहो।''

21. अपने योग्य क्या?

ब्र. सुमत प्रकाश जी एक बार जब परम आदरणीय पं. जी के पास आये तो कुछ कपड़े लेकर आये। पं. जी को कपड़े दिखाते हुए बोले कि आपके योग्य वस्त्र लाये हैं, इन्हें ग्रहण कीजिए। पं.जी प्रश्न पूर्वक बोले-**यदि ये वस्त्र हमारे योग्य हैं तब निर्ग्रन्थ दशा हमारे योग्य हुई ही नहीं, फिर हम दीक्षा नहीं ले सकते?** हम सभी विस्मित हो निहारने लगे।

वास्तव में ज्ञानी के हृदय को पढ़ना हर किसी की सामर्थ्य नहीं। जिन्हें क्षण-क्षण में मुनिराज की याद आती हो, अरे! याद क्या आती हो, जिनके हृदय में महामुनीश्वरों की भक्ति सदा वर्तती हो, वे ही धन्य हैं, वे ही वंदनीय हैं।

22. दया

शाम का समय था, बानपुर क्षेत्र जी के दर्शन करके वापस आ रहे थे। पं. जी मात्र कुएँ का पानी उपयोग करते थे, इसलिए हाथ-पैर धोने के लिए शीशी में पानी लेकर चलते थे। हाथ में पानी की शीशी लेकर पं. जी आगे निकल गये। शीशी से पानी टपकने के कारण उनके हाथ गीले हो रहे थे सो उन्होंने शीशी फेंक दी। अंधेरा होने के कारण मैंने भी ढूँढ़ने की कोशिश नहीं की। कुछ दूर चलकर आ. पं. जी ठहर गये और मुझसे जाने को कहा। उनके पास एक भाई को छोड़कर मैं चला गया, तब वे पुनः लौटकर गये और शीशी को ढूँढ़ा। बोले-'**यदि शीशी फूट जाती तब तो कोई बात नहीं थी परन्तु उसमें पानी भरा रहेगा तो कितनी हिंसा होगी, वह पानी कब तक सड़ता रहेगा?**

जब पं. जी ने मुझे इस बात से अवगत कराया तो मुझे खेद हुआ कि अपना थोड़ा सा प्रमाद कितने बड़े पाप का जनक बन जाता है और ज्ञानियों का हृदय कितना करुणामयी होता है- इसका नाम है दया। हमें बिना छने पानी को बर्बाद करने में भी दोष दिखाई नहीं देता और ज्ञानियों को जीव विराधना का भी विचार रहता है।

'सन्तों का जीवन मात्र प्रशंसनीय ही नहीं अनुकरणीय भी है।'

23. लग गई

परम आदरणीय पं. जी के साथ सोनागिर क्षेत्र जी की यात्रा करने जा रहे थे। मैं गाड़ी में सबसे पीछे बैठा था, स्पीड़ ब्रेकर के कारण सिर गाड़ी की छत से टकरा गया तो मैं बोल पड़ा 'लग गई।'

पं. जी बोले–अभी कहाँ लगी है, एक बार **वास्तव में लग तो जाए कि ये गाड़ी मैं नहीं, ये मेरी नहीं** जिन कषायों से गाड़ी आयी, वे कषायें मेरी नहीं। जिस पुण्य से गाड़ी मिली, वह पुण्य मेरा नहीं। जिस भाव से गाड़ी में बैठे, वह भाव मेरा नहीं। मैं इन सबसे भिन्न, निराला तत्त्व हूँ। अरे! वह दिन कब आये जब इस गाड़ी में बैठना बंद हो जाए। धन्य हैं वे मुनिराज! जिन्हें इसकी आवश्यकता ही नहीं और गाड़ी में चलने से अहिंसा भी नहीं पल पाती। मुनिराज ईर्या समिति पूर्वक चलते हैं तब महाव्रती कहलाते हैं। कब वह घड़ी आये....।

वास्तव में लगना चाहिए, भेदज्ञान निरंतर चलना चाहिए। **''आत्मा ही त्रैलोक्य में सर्वोत्कृष्ट तत्त्व है। आत्मार्थ ही त्रैलोक्य में सर्वोत्कृष्ट कार्य है। आत्मज्ञान ही त्रैलोक्य में सर्वोत्कृष्ट कला है।''**

24. वैराग्य ही अनुकरणीय है

सुबह का समय था। आदरणीय पं. जी साहब दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होकर बैठे थे कि तभी एक साधर्मी आये, बोले–पं. जी साहब हमारे चाचा जी का लड़का शांत हो गया है, इसलिए ग्वालियर जा रहा हूँ, आपके लिए क्या लाऊँ?

पं. जी साहब बोले–यदि लाना ही है तो वैराग्य लेकर आना **वैराग्य के प्रसंग पर वैराग्य ही अनुकरणीय है।**

अहो! जिनके मुखाग्र से शब्द भी जब संयम और वैराग्य के निकलते हैं तब उनका अंतरंग भी संयम और वैराग्य का ही निधान होगा। जिसके अंदर जो होता है, बाहर भी वही निकलता है। जैसे हींग की शीशी में से हींग की गंध एवं कपूर की शीशी में से कपूर की गंध आती है, उसीप्रकार ज्ञानी के वचनों से ज्ञान–वैराग्य एवं अज्ञानी के वचनों से विषय–कषाय का ही स्वाद आता है।

धन्य हैं वे ज्ञानी! जो वैराग्य रथ पर आरूढ़ हो शिवपथ में अविरल रूप से बढ़ते जाते हैं।

25. हित की बात

सन् 1998, डॉ. वीरसागर जी (दिल्ली), परम आदरणीय पं. जी साहब के सत्संग प्राप्ति की भावना से मौ आये थे। चर्चा के दौरान उन्होंने पं. जी साहब को बताया कि मुझे पी.एच.डी की उपाधि प्राप्त हो गई है, तब पं. जी बोले–'**बाहर की खोज से उपाधि मिलती है, अन्तर की खोज से समाधि मिलती है। उपाधि बंधन का कारण है, समाधि मुक्ति का कारण है।**'

बोले–आत्मा निरुपाधि तत्त्व है, यह मनुष्य जीवन उस निरुपाधि आत्म स्वभाव की आराधना के लिए मिला है, बाह्य उपाधि में उलझने के लिए नहीं।

डॉ. वीरसागर जी को यह बात हृदय से भा गई। उन्हें इतनी प्रसन्नता हुई कि तीन दिन में इस वाक्य को उन्होंने अनेक बार दोहराया। सत्य भी है–आखिर हित की बात सुनने में किसे प्रसन्नता नहीं होती अर्थात् सभी को होती ही है।

हमारा जीवन उपाधिमय नहीं, समाधिमय हो।

26. संतोष

परम आदरणीय पं. जी साहब के मुखारविन्द से निकले पवित्र वचनों में से चुनकर कुछ स्टीकर बनवाए गये थे, जिनमें से एक था– **'सुख के लिए सामग्री नहीं, संतोष चाहिए और संतोष तत्त्वज्ञान बिना संभव नहीं।'** यह स्टीकर उदयपुर के एक धनवान मेटल व्यापारी को मिला, उसे पढ़कर तो मानो उनका जीवन ही बदल गया। उन्हें पं. जी साहब के दर्शन की इतनी उत्सुकता हुई कि मानो अभी चले जायें। उन्होंने कहा कि मैं अपनी संपत्ति में से दस लाख रुपये कहीं लगाना चाहता हूँ। मुझे तो अब संतोष चाहिए, वह तत्त्वज्ञान चाहिए, जिससे सुख मिले। अब मुझे इस संपत्ति की चाह नहीं।

जब आदरणीय पं. जी साहब को इस घटना से अवगत कराया तो उन्होंने कहा–जब सामान्य जीव एक वाक्य को पढ़कर सब कुछ छोड़ने को तैयार है तब वास्तव में सम्यग्दृष्टि तत्त्वज्ञान के बल से छ:खण्ड का वैभव तृण सम जानकर, ठोकर देकर चले ही जाते होंगे, इसमें क्या आश्चर्य है ?

27. लगन

आदरणीय पं. जी साहब जब एम.ए. में अध्ययन करते थे तब कॉलेज जाते समय मार्ग में जिनमंदिर में जिनेन्द्र परमात्मा के दर्शनोपरांत ही जाते थे। एक दिन समय शेष जानकर मंदिर में स्वाध्याय के लिए बैठ गये। प्रकरण था–'भरत का आहार दान।' जब स्वाध्याय करने के उपरान्त उठे और घड़ी में समय देखा तो यह क्या? कॉलेज का समय तो समाप्त हो चुका है।

देखो ! कैसी लगन है, कैसी रुचि है, वास्तव में ग्रन्थ रचना के समय पं. टोडरमल जी को छह मास तक नमक का विकल्प भी नहीं आया तो इसमें क्या आश्चर्य ? ज्ञानियों की दशा तो होती ही ऐसी है।

'बाहर नगन रहें, अन्तर मगन रहें।
अन्तर में मंगल है, जंगल गवाही है।।'

28. मजबूरी

शाम का समय था, हम कुछ भाई पं. जी साहब के नजदीक बैठे थे। हम लोगों ने पं. जी साहब के समक्ष यात्रा का प्रस्ताव रखा। पं. जी बोले–कौन ले जा रहा है ? कैसे चलें ? पराधीन हैं। कहाँ से गाड़ी आयेगी ? यदि किराये की लेकर चलते हैं तो कितने दिन खड़ी रहेगी ? एक भाई बोले–एक गाड़ी खरीद लें, उसका नाम रखेंगे 'वैराग्य वर्द्धनी।' पं. जी साहब बोले–उसका नाम वैराग्य वर्द्धनी नहीं 'मजबूरी' रखना क्योंकि वह जरुरी नहीं मजबूरी है। उससे वैराग्य

वृद्धिगंत कैसे हो सकता है ? हम पैदल चलने में असमर्थ हैं, इसलिए बाहर का सहारा लेना पड़े तो वह मजबूरी हुई ।

फिर उन्होंने कहा कि–गाड़ी आयेगी तो उसकी परेशानियाँ भी साथ आयेंगी। अभी लगता है कि अपनी गाड़ी हो तो चाहे जब, चाहे जहाँ चल दें परन्तु मान लो गाड़ी आ गई। कहीं रास्ते में खराब हो गई, पंचर हो गई या कोई बात हो गई तो बैठे रहो, अपना दिमाग लगाओ, अनेक परेशानियाँ हैं।

हम जिस मार्ग पर निकले हैं, वह गाड़ी का नहीं, पैदल विहार करने का मार्ग है। हमारे संत पैदल विहार करते हैं, जिसमें कोई पराधीनता नहीं।

अहो ! आपके मुखारविंद से प्रस्फुटित ये अमृत वचन ही तो हमें विलासिता के पंक में गिरने से बचाने में सहायी हैं अन्यथा इस भौतिक युग में विलासिता की मार से बचे रहना असंभव नहीं तो दुर्लभ अवश्य है।

''विलासी जीवन में धर्म (तत्त्व) का प्रवेश संभव नहीं।''

29. साधर्मी सेवा

अपने जीवन में साधर्मी सेवा का अवसर देखने को मिला–मैं बुन्देलखण्ड की यात्रा के उपरान्त आदरणीय पं. जी साहब के पास आया, उसी दिन एक ब्र. भाई गोरमी से मौ आये थे। उनका स्वास्थ्य बहुत खराब था, मलेरिया बिगड़ गया था (टायफाइड हो गया था) लगभग 40 लंघन हुए थे।

उपचार के दौरान मैंने देखा कि पं. जी साहब दिन–रात लगे रहते थे। वैद्यों से चर्चा करना, पल–पल की खबर रखना। स्वयं का स्वास्थ्य छोड़कर, स्वयं आहारादि को गौण करके ब्र. जी की सेवा में ही लगे रहते थे। अपने हाथों से ब्र. जी के हाथ–पैर दबाते, ब्र. जी को तकिया से टिकाकर बैठा देते और स्वयं बैठकर माला फिराते, सामायिक कराते, यहाँ तक कि अपने हाथों से पं. जी सा. ने ब्र. जी की गंदगी साफ की। जरा सी खांसने की आवाज आती तो कमरे में से दौड़कर आते। परिवार जनों को सुला देते कि आप लोग कुछ देर आराम कर लें पता नहीं कब जागना पड़े और स्वयं बार–बार उठकर देखने आते।

यह सब तो बाहर की बात थी। अंतरंग परिणामों को संभाले रखने की प्रेरणा भी सतत् करते थे। उनका वात्सल्य, उनकी करुणा, उदारता, निर्वांछकता, निर्विचिकित्सा आदि देखने को मिला जो अन्यत्र दुर्लभ है। उपदेश देने वाले तो बहुत हो सकते हैं किन्तु समय पर वैसी प्रवृत्ति करने वाले उन सरीखे कोई विरले ही होते हैं।

अपने जीवन में मैंने ऐसा न कभी देखा था, न सुना था न पढ़ा था परन्तु आज देखकर और ऐसे महापुरुषों का सत्संग पाकर मुझे जो अत्यंत प्रसन्नता हुई उसका प्रमाण नेत्रों ने अश्रु छलका कर दिया और मन में भाव उत्पन्न हुए ऐसे ज्ञानीजन के सानिध्य में मेरा समाधिमरण हो, जिससे मेरा जीवन धन्य हो जावे।

‘धर्मात्मा निकट हों, चर्चा धरम सुनावें।
वे सावधान रक्खें, गाफिल न होने पाऊँ।।दिन रात.।।

30. दो नारियल

वह सुबह कोई निराली ही थी। आदरणीय पं. जी साहब स्नानादि से निवृत्त ही हुए थे तभी एक साधर्मी दो नारियल लेकर आये। पं. जी साहब ने पूछा–कहो भाई ! ये नारियल कैसे ? बोले–आज भाव हुए कि पं. जी साहब के पास नारियल ले चलें, सो चले आये।

पं. जी–बहुत भाव से लाये हो, अतः एक हम रखते हैं, एक तुम रखो। अच्छा! नारियल तो ठीक है पर यह बताओ कि कुछ नियम, संयम भी है या नहीं। उन्होंने तुरन्त पं. जी के पैर छुए और बोले–पं. जी हम बहुत दिनों से सोच रहे थे परन्तु आज से हम ब्रह्मचर्य का नियम लेते हैं और उन्होंने उसी दिन से आजीवन ब्रह्मचर्य का नियम अंगीकार कर लिया।

अरे भाई ! आपके दो नारियलों ने तो इतिहास बना दिया। अरे इतना ही नहीं जब यह कथा कुछ सुकुमारों को सुनाई तो उन्हें भी इतना हर्ष हुआ, ब्रह्मचर्य की महिमा भासित हुई कि उन्होंने भी सावधि ब्रह्मचर्य व्रत सहर्ष अंगीकार कर लिया।

कुछ वर्ष बाद गर्मियों की छुट्टियों के सदुपयोग हेतु पं. टोडरमल स्मारक के दो छात्र अपने भाई के साथ आ. पं. जी साहब के चरण सानिध्य में आये हुए थे। एक दिन एक शास्त्री जी दो नारियल लेकर आये। पं. जी साहब को पूर्व की घटना का स्मरण हो आया। उन्होंने वह घटना एक कथा रूप में सुनाकर एक नारियल वापस कर

दिया। मैं बोला–पं. जी ! कहानी अधूरी रह गई। नारियल की वापसी तक तो हो गई अब इसके बाद ? पं. जी बोले– ये पढ़े–लिखे लोग हैं, सोच–विचार करने दो। तभी एक भाई ने पं. जी के चरण स्पर्श करके कहा– पं. जी साहब मैं दो वर्ष तक ब्रह्मचर्य का अभ्यास करूँगा। तब हम लोग उन दोनों छात्र भाइयों की ओर देखने लगे। उस समय तो वे सिर झुकाकर चले गये परन्तु शाम को आकर उन्होंने पं. जी साहब के चरण स्पर्श करके कहा कि हम भी पाँच–पाँच वर्ष तक ब्रह्मचर्य से रहने का नियम लेते हैं। मुझे अपार प्रसन्नता हुई, अनुमोदना की। वास्तव में वे दो नारियल कमाल के थे। शायद आगे कभी वे नारियल और भी कोई चमत्कार दिखायें।

31. प्रथम कर्तव्य

शाम का समय था, पथ भ्रमण हेतु आ. पं. जी साहब के साथ सड़क की ओर निकल गये थे। एक ब्र. जी सोलापुर से आये हुए थे, साथ ही थे। उन्होंने पूछा–पं. जी साहब सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय भोजनादि का क्या विधान है ? आ. पं. जी साहब ने समाधान में कहा– सूर्योदय के अन्तर्मुहूर्त बाद तथा सूर्यास्त से अन्तर्मुहूर्त पूर्व ही भोजन की क्रियाओं से निवृत्त हो जाना चाहिए परन्तु प्रश्न करने का कारण क्या ? ब्र. जी बोले–मैं भी अभ्यास कर रहा हूँ तब आ. पं. जी साहब ने कहा–सबसे पहले हर परिस्थिति में समता रहे यह अभ्यास करो। बाहर के अभ्यास तो स्वतः हो जाऐंगे। पहले अपना हित साधो और बाह्य मर्यादाओं का भी पालन करो।

सत्य ही है ! जीवन का क्या भरोसा ? समय को किसने देखा है ? काल तो अतिथि है, जिसके आगमन की कोई निश्चित तिथि नहीं; अतः प्रथम में प्रथम अपना हित कर लेना ही कर्तव्य है, वही श्रेयस्कर है।

32 मार्ग तो यही है

एक सरल स्वभावी बालक था। संगति अपना असर तो छोड़ती ही है, साथ रहने से उसकी भावना भी निवृत्ति की हो चली थी। एक दिन हम आ. पं. जी साहब से उस बालक के संबंध में ही चर्चा कर रहे थे कि अभी छोटी उम्र है आगे क्या होगा ? पं. जी साहब बोले–भाई ! हम क्या कर सकते हैं ? हम तो अनुमोदना करते हैं। वास्तव में मार्ग तो यही है, यदि सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र प्रगट होता है तब तो सर्वोत्तम है ही, यदि न भी हो पाये तब भी जीवन तो आराधना के लिए ही है। कदाचित् वह भी नहीं बनता और समाज सेवा में भी लगते हैं तब भी उत्तम है। विवाह करके कितने झंझट, कितने दु:ख हैं–इस पर विचार नहीं करते। मान लो विवाह के पश्चात् चार लड़कों को पाला, अंत समय में वे सहायी होंगे, इसकी क्या गारंटी है ? और यदि हम समाज सेवा करेंगे, पढ़ेंगे, पढ़ायेंगे, स्नेह, वात्सल्य देंगे तो समाधि कराने वाले भी बहुत–स्वतः आ ही जावेंगे।

मार्ग तो बहुत अच्छा है। तुम लोग मिलकर रहो, पढ़ो, पढ़ाओ, स्नेह–वात्सल्य दो। हम से जितनी बनेगी, पूरी तरह से सहायक होंगे। किसी बात की चिंता मत करना।

हमारे जीवन में जो विषमता है, वह तो मेरे स्वास्थ्य की कमजोरी के कारण है, वह तुम लोगों को ग्रहण योग्य नहीं है।

अहो! ये शब्द सुनते-सुनते मेरी आँखे नम हो गईं। मुझे विचार आया कि देखो! महापुरुषों का जीवन, कितनी महानता होने पर भी लघुता है। सत्य ही है ज्ञानियों के हृदय को आंका नहीं जा सकता। उनका हृदय समुद्र वत् अपार होता है, जिसमें सब कुछ समा जाए फिर भी कोई उथल पुथल नहीं। उदारता, निर्वांछकता, शांतता आदि गुण उनके द्वारपाल हैं तब अन्तर की शोभा कैसी होगी? उसका अंकन करना अपनी सामर्थ की बात तो नहीं।

33 नाश्ता-पानी

एक साधर्मी भिण्ड से अमायन आये हुए थे। दूसरे दिन वापस भिण्ड जाना था, अतः भोजनोपरांत आ.पं.जी साहब के पास पहुँचे। कुछ समय चर्चा के पश्चात् पं. जी बोले-इन्हें नाश्ता-पानी तो करा दो। साधर्मी भाई ने कहा-अभी-अभी तो भोजन किया है, अब कुछ नहीं करना। पं. जी बोले-नाश्ता-पानी तो जरूरी चीज है, इसके बिना कैसे चलेगा? तब पं. जी साहब ने समझाते हुए कहा-**प्रवचन-भोजन है, चर्चा-नाश्ता है, भक्ति-पानी है।** भोजन तो समय पर ही होता है, लेकिन नाश्ता तो कभी भी कर सकते हैं। वह भोजन तो पुण्य प्रमाण मिलेगा ही। यह भोजन करो, यह नाश्ता करो।

सत्य ही है–असली भोजन–पानी तो यही है। उस भोजन बिना जीवन न रहे, ऐसा आवश्यक नहीं परन्तु इस भोजन–पानी बिना तो प्रतिक्षण भावमरण होता रहता है।

इक योगी असन बनावे,

आप बनावे, आपहि खावे...।

34. सबसे अच्छा रस

एक दिन पं.जी साहब ने एक साधर्मी भाई से कहा–भार वालों से पूछना कि सेंकने (फुलाने) के लिए कौन से चने अच्छे होते हैं? शाम को भाई ने आकर कहा कि–अशोकनगर वाले चना अच्छे फूलते हैं किन्तु उनमें स्वाद नहीं है। अपने देशी चना में रस होता है, उन्हीं को सुखाकर सिकवा लेंगे। जो रस देशी चना में है वह और में नहीं। आ. पं. जी साहब बोले–**अध्यात्म का रस, भक्ति का रस, वात्सल्य का रस ये ही रस हैं, बाकी तो सब ठीक ही है, सब अरस हैं।**

जिन्होंने इस रस का पान किया है, वे धन्य हैं, उन्हें अन्य समस्त रस फीके लगते हैं। अरे! जो विष तुल्य हैं, उन्हें रस कैसे कहा जाए? इन्द्रिय के विषय–भोग तो मधुर विष समान बताए हैं– 'इन्द्रिय के भोग मधुर विष सम।' पान करने योग्य तो असली रस ही है, वही अमरत्व का कारण है।

35. ऐसा अवसर कब मिले ?

आ. पं. जी साहब का तखत थोड़ा ढीला हो गया था, उन्होंने किसी भाई से कहा कि बढ़ई को ले आना, तखत ठीक कराना है।

शाम को बढ़ई आया। तखत ठीक करने के पश्चात् हाथ जोड़कर बोला महाराज! समय तो बिल्कुल नहीं था, बहुत काम के कारण पहले तो मैंने कल आने को बोल दिया था, फिर सोचा– महाराज की आज्ञा हुई है, फिर ऐसा अवसर कब मिले, क्या भरोसा ? सो मैं सब काम छोड़कर चला आया। अब चलता हूँ, बहुत काम पड़ा है। अन्य किसी का होता तो टाल देता परन्तु आपका नाम सुनकर दर्शन का लोभ नहीं छूटा।

आ. पं. जी साहब भी उसकी भक्ति की प्रशंसा किए बिना न रह सके।

सच ही है–पुण्यवंतों का पुण्य आगे–आगे दौड़ता है।

प्रशंसनीय है भाई ! तुम्हारी भक्ति, तुम्हारा कार्य; जो आज्ञा पाकर दौड़े–दौड़े चले आये। हमारे गुरु के प्रति भी हमारी ऐसी भक्ति हो।

36. द्रवित हृदय

शाम का समय था, हम भोजन करके आये तो देखा–पं. जी साहब स्वास्थ्य ढीला होने के कारण लेटे हुए थे। हम लोगों से कहा– वर्णी जीवन गाथा में से बाई जी का जीवन चरित्र वाला प्रसंग पढ़ो। एक भाई प्रसंग पढ़ने लगे, हम सब भी वहीं बैठे सुन रहे थे। मैंने देखा कि बाई जी का चरित्र सुनते–सुनते पं. जी साहब के नेत्र छलक पड़े।

उसमें जब बाई जी के समाधिमरण का अत्यंत वैराग्योत्पादक प्रेरणादायी, दृढ़ करने वाला प्रसंग सुना तो मेरे नेत्रों से भी अश्रुओं ने बाह्य आगमन का प्रयत्न किया, मैंने उन्हें नेत्रों की सीमा में सीमित रहने के लिए विवश कर दिया था परन्तु पं. जी साहब इतने कोमल हृदयी हैं कि अश्रुओं पर उनका अंकुश न लग सका और अश्रु उनकी कोमलता पर विजय प्राप्त कर तीव्र धारा प्रवाह में बह निकले।

प्रसंग समाप्ति के कुछ क्षण पश्चात् बोले कि– '**कंचन, कामिनी,कीर्ति के लोभ में कभी नहीं फंसना अन्यथा समाधिमरण संभव नहीं।**'

बाई जी जैसा समाधिमरण हमारा भी हो, इसके लिए हमें भी बाई जी जैसा सरल एवं दृढ़ होना पड़ेगा।

अहो! कब धन्य सुअवसर पाऊँ।
होवे नित समाधिमरण मेरा।

37. करुणा

शाम के लगभग 4 बजे होंगे। आ. पं. जी साहब एवं ब्र. सुमत जी अमायन में छत पर बैठे चर्चा कर रहे थे तभी अचानक हाहाकार शब्दों से किसी अप्रिय घटना ने उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। दृष्टि उस ओर करने पर ऊँचे उठते हुए धुएँ से अनुमान लगा कि कहीं अग्नि ने अपने पैर पसार लिए हैं जिससे जन–मानस प्रभावित है। पं. जी साहब से भी नहीं रहा गया, अतः वे भी उस ओर चल दिए। उस स्थान पर पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि घर में रखी सूखी घास में आग लगने से घर तबाह हुआ जा रहा है। उपस्थित भीड़ कुँए

से पानी खींच-खींच कर डाल रही थी परन्तु अग्नि पर काबू दुर्लभ हो रहा था। पं. जी साहब भी लोगों को जन हानि से बचाव हेतु मिट्टी, रेत डालने की प्रेरणा करते रहे, उसमें एक पालतु पशु फंसा हुआ था।

यद्यपि चतुर्दशी का दिन था फिर भी आप लोगों ने दुखियों पर करुणा की मुख्यता रखते हुए अनुमोदना को गौण कर दिया। आग पर काबू पा लेने के पश्चात् पं. जी साहब ने उनके सोने के लिए रजाई-गद्दा, पहनने के लिए गर्म वस्त्र उपलब्ध कराये एवं समाज को प्रेरित करके एक सहयोग राशि उन्हें प्रदान कराई और बैठ गए सामायिक में, आलोचना-प्रतिक्रमण के लिए।

आपकी करुणा का कौन बखान करे। धन्य है आपका जीवन। हे प्रभो ! मुझे भी ऐसी सुमति प्राप्त हो।

38. एक तीली

शाम का समय था बिजली न होने से अंधकार व्याप्त था। पं. जी साहब ने एक भाई से कहा कि- एक लालटेन जलाकर समवशरण के बाहर रख दो जिससे दर्शनार्थियों को परेशानी न हो। एक भाई ने माचिस की तीली जलाकर लालटेन जलाने का प्रयत्न किया किन्तु तब तक तीली पूरी जल चुकी थी और लालटेन भी नहीं जली।

पं. जी साहब ने समझाते हुए कहा-एक लालटेन जलाकर भी नहीं रख सकते हो। एक तीली बर्बाद कर दी। तुमने तो सोच लिया कि एक तीली जलने से कौन सा पहाड़ टूट पड़ा परन्तु विचार करो एक तीली बनने में कितने मजदूरों की शक्ति खर्च हुई (लकड़ी आई, उसकी सफाई हुई, तीली बनी, पैकिंग हुई, बाजार में आई, बेची गई)

एक तीली बर्बाद करके इतने मजदूरों की मेहनत बर्बाद हुई, कितनी हिंसा हुई, इतना समय खर्च हुआ। किस कारण से ? मात्र जरा से प्रमाद से, पैसे की कीमत नहीं है। एक पैसे की तीली जल गई तो कुछ हो गया ऐसा नहीं है परन्तु प्रमाद है। इस एक तीली को बचा लेते तो पता नहीं कब ? कैसी परिस्थिति में इसकी जरूरत पड़ जाये। एक तीली जलने में कितने जीव जले। विचार करो यदि उनमें हम भी शामिल होते तब ?

अहो ! इतना गहरा चिंतन ! यह सब ज्ञान की आराधना का ही फल है और हमारे में जो ज्ञान का विकास नहीं है वह सब ज्ञानी की विराधना का फल है।

39. उज्ज्वलता

एक भाई दोपहर में कपड़े धो रहे थे। थपारी से कूटने की आवाज पं. जी साहब के कानों में पड़ रही थी। कपड़े धोने के पश्चात् जब वह भाई पं.जी साहब के समीप आये तो पं. जी बोले–भैया ! मैल दूर करने के लिए कपड़े कूट रहे थे। **यदि मलिन परिणाम होंगे तो इसीप्रकार ठुकाई होगी, इसलिए सदैव उज्ज्वल रहना। उज्ज्वल भावना रखना, उज्ज्वल परिणाम रखना। मिथ्यात्व पर कठोर प्रहार करना पड़ेगा।**

वास्तव में समस्त दुख–पाप परिणाम का ही फल है, अतः दुःखों के अभाव का उपाय पाप का त्याग ही है।

'दुःख का कारण अध्यवसान।
त्यागो पाओ आतम ज्ञान।।'

40. देव दर्शन

दोपहर का समय। एक साधर्मी भाई का आगमन हुआ बोले–पं. जी साहब के दर्शन की अभिलाषा से आया हूँ। दर्शन मिल जायेंगे ?

मैंने पं. जी साहब को सूचना दी, बोले–उनसे कहो पहले मंदिर जी में भगवान के दर्शन कर लें, फिर बुला लो।

साधर्मी भाई कमरे पर आये, चरण स्पर्श कर बैठ गये।

पं. जी बोले–दर्शन कर आये ?

भाई–जी, दर्शन कर आये।

पं. जी–भगवान ने कुछ कहा ?

भाई–(हंसते हुए) वो तो प्रतिमा थी, वह क्या कहेगी ?

पं. जी–अरे ! तो तुमने दर्शन किए ही नहीं।

भाई–नहीं, मैं अभी दर्शन करके ही आ रहा हूँ।

पं. जी–अरे भाई ! भगवान कह रहे हैं कि जैसा मैं ज्ञान, दर्शन, सुख स्वरूपी आत्मा हूँ, ऐसे ही तुम भी मेरे समान ही हो।

मेरी शांत मुद्रा को देखकर तुम भी अन्तर्मुख हो अपने सुख स्वरूप आत्मा को पहिचान कर तृप्त हो जाओ।

यही देवदर्शन है, यही देव दर्शन का फल है।

बोले–आत्मानंदजी बाबाजी कहा करते थे–देखो ! इन सबकी मुद्रा, सबकी एक सी ही मुद्रा है। सब हाथ पे हाथ धरे बैठे हैं, सब अपने को देख रहे हैं। एक हम ही हैं जो इधर–उधर देख–देखकर भटक रहे हैं।

'होऊ मेरी ऐसी दशा, जैसी तुम धारी है।'

41. अपने समीप है क्या ?

एक विद्वान दशलक्षण पर्व में अमायन आये हुए थे। आ. पं. जी साहब से जयपुर की चर्चा हो रही थी। किसी मुमुक्षु भाई की बात आयी तो विद्वान बोले कि–उनकी बहुत दूर–दूर तक पहुँच है। स्मारक का काम तो वे फोन से ही करा देते हैं। पं. जी साहब बोले– **दूर–दूर तक पहुँच भले हो लेकिन समीप में पहुँच नहीं है,** अंतर तक पहुँच नहीं है और आनंद तो अंतर की पहुँच वालों को ही मिलता है, बाहर की पहुँच तो आकुलतामय है। चर्चा आगे बड़ी तब विद्वान बोले कि–वे तो सब प्रकार से समर्थ हैं। पं. जी बोले–सब प्रकार से समर्थ कहाँ ? ज्ञान–वैराग्य में समर्थ कहाँ ? जो ज्ञान–वैराग्य में समर्थ हैं, वे ही समर्थ हैं, अन्य सब तो ठीक ही है। यह वैभव तो विनाशीक है और अपना भी नहीं है। इससे अपनी सामर्थ्य की माप करना कहाँ तक उचित है ?

42. हमारा अविवेक

हम सभी पं. जी साहब के साथ भिण्ड से मौ आ रहे थे, सामान कुछ अधिक था, गाड़ी सामान से ही भर चुकी थी। पं. जी साहब को बहुत बुरा लगा, बोले–कोई देखेगा तो क्या कहेगा ? ये त्यागी हैं, कितना सामान भरा हुआ है। आगे से ध्यान रखना, इतना सामान साथ में नहीं रखना। साथ वाले भाइयों का तो मात्र एक–एक ही थैला था, मेरे दो थैला थे तथा कुछ अन्य सामग्री।

गाड़ी में बैठे–बैठे अनायास ही मेरी आँखों से अश्रु छलक पड़े कि देखो हम लोगों के अज्ञान, अविवेक के कारण पं. जी साहब को कितनी परेशानियाँ सहनी पड़ती हैं। पं. जी ने देखा तो उन्होंने तुरंत हाथ रखकर रोने का कारण पूछा, फिर अपने लोटे से पानी निकालकर पिलाया। दूसरे दिन प्रातः 5 बजे उठकर जब मैं वन्दना करने आया तो उन्होंने मुझे बिठा लिया और बहुत स्नेह से मुझे सहलाते रहे। यद्यपि उस समय वे मौन थे, अतः शब्दों से तो कुछ भी नहीं कहा परन्तु न कह कर भी बहुत कुछ कह दिया।

कितना वात्सल्य है उन्हें हम लोगों के प्रति, यह तो उनका हृदय ही बता सकता है, जिसका माप करना अपने वश की तो नहीं। वे तो यही चाहते हैं कि ये सभी लड़के प्रसन्न रहकर आराधना करें। प्रतिक्षण इनकी बुद्धि विकसित हो, ये ज्ञान का प्रकाश करें परन्तु हम लोगों में बहुत कमी है।

43. होता स्वयं जगत परिणाम

आ. पं. जी साहब के समीप चौके के बाहर ही मैं बैठा था कि तभी एक चाची आईं और चौके में जाने को बढ़ीं। पं जी साहब ने रोकते हुए पूछा–क्या करोंगी अन्दर जाकर ? चाची–देखें जीजी क्या कर रहीं हैं। पं. जी साहब बोले–मैं यहाँ बैठे–बैठे बता सकता हूँ क्या कर रहीं हैं। अरे ! ज्ञान कर रहीं हैं। चाची कुछ सकपका गईं, उनकी समझ में कुछ न आया। तब पं.जी साहब बोले–अरे ! अन्दर कुछ काम कर रहीं हैं, उसका भी तो ज्ञान ही कर रहीं है और क्या कर सकतीं हैं।

पुद्गल का पुद्गल में परिणमन हो रहा है। उसमें कोई क्या कर सकता है ? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का परिणमन (कुछ भी) करने में अशक्य है। ज्ञानी ज्ञान करता है, अज्ञानी राग करता है। ज्ञानी ज्ञान को भोगता है, अज्ञानी राग की आकुलता को भोगता है।

ज्ञानी सदा भेदज्ञान करते हैं कि ये मेरा कार्य नहीं। मेरा कार्य तो जानना मात्र है।

''होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का कर्त्ता क्या काम...''

44. बड़ा कौन ?

एक बार मैं और सुनील भैया इस बात पर झगड़ पड़े कि हम दोनों में बड़ा कौन ? वे कहते कि आप बड़े हैं, मैं कहता कि आप बड़े हैं। वे कहते कि आप पं.जी साहब के सानिध्य में पहले आये, अतः आप बड़े हुए, मैं कहता कि आप मुझसे उम्र में बड़े, ज्ञान में बड़े, अतः आप बड़े हुए। अंततः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पं. जी साहब से इसका समाधान करायेंगे।

पं. जी साहब के सन्मुख जब हमने अपनी समस्या सुनाई तो बोले-क्यों छोटे-बड़े के चक्कर में पड़े हो ? न तुम बड़े, न तुम बड़े। लोग कहते हैं वे बहुत बड़े आदमी हैं, भाई ! बड़े तो ज्ञान-वैराग्य से होते हैं। किसी ने अपने से पहले जन्म ले लिया तो वह बड़ा हो गया। अरे ! हम उससे पहले संयम ले लें तो हम उनसे भी बड़े हो जाएँगे। सीता माता ने दीक्षा ले ली तब रामचन्द्र जी हाथ जोड़कर नमस्कार करते थे-बताओ कौन बड़ा ?

वास्तव में जीव की दृष्टि से देखा जाए तो सभी जीव समान हैं, कोई–छोटा–बड़ा नहीं। छोटा–बड़ा देखने में कषाय की उत्पत्ति होती है।

छोटे बड़े की भावना ही मान का आधार है। **हे भव्य! यदि अपने जीवन में मंगलाचरण करना हो तो अपने में व सर्व जीवों में सिद्धत्व की स्थापना करो।**

45. ढंग से करो

दशलक्षण पर्व का पावन समय। एक दिन हम सभी भाई भोजन कर रहे थे। एक भाई अल्प भोजन कर आ.पं.जी साहब के समीप पहुँचे। पं. जी ने पूछा–भोजन कर आये ? भाई बोले–बहिन जी ठीक ढंग से नहीं परोस रहीं थीं सो हम उठकर चले आये।

पं. जी–आखिर हुआ क्या ?

कहीं वे बीच में आ जावें, कहीं कुछ उठायें, कहीं कुछ। औरों को परोसने नहीं देतीं, स्वयं ढंग से परोस नहीं पातीं।

ठीक है। हम कह देंगे कि ढंग से परोसा करें और तुम भी ढंग से किया करो।

हम तो ढंग से ही कर रहे थे।

ढंग माने क्या जानते हो ? ढंग से माने–भेदज्ञान पूर्वक, समता पूर्वक, संयम के लिए, आसक्ति छोड़कर, निराहारी की दृष्टि पूर्वक भोजन करना। उसका नाम है ढंग से भोजन करना। बताओ ढंग से भोजन कर रहे थे ? हम सभी प्रसन्न्ता से बोले– ये तो हम जानते ही नहीं थे, आज सुन रहे हैं।

ढंग से परोसना माने–यत्नाचार पूर्वक, संयम के लिए हो, परिणाम न बिगड़ें। ये परोसने वाला मैं नहीं हूँ–ऐसे परिणाम अंतर में हों।

इसीप्रकार ढंग से बैठना, ढंग से कार्य करना, ढंग से कपड़े धोना माने बहुत सारा पानी फैलाना या बहुत सर्फ बर्बाद करना यह नहीं। ढंग से माने– जैसे कपड़े भिन्न हैं, मैल भिन्न है, ऐसे ही कर्मादिक की मलिनता से मैं भिन्न हूँ। साबुन लगाने से ये मलिनता दूर हुई, इसीप्रकार भेदज्ञान एवं समता के अभ्यास से रागादिक की मलिनता दूर होकर उज्ज्वल सहज स्वभाव प्रगट हो जावेगा।

''भेदज्ञान साबू भयो, समरस निर्मल नीर।
धोबी अंतर आतमा, धोबे निजगुण चीर।।''

46. जल तैं भिन्न कमल है।

जिस मशीन का हम उपयोग करते हैं, उसकी संभाल करने का ज्ञान भी होना चाहिए, पता नहीं कब–कहाँ आवश्यकता पड़ जाए।

इसीप्रकार शरीर संयम की धरोहर है, इसके बिगड़ने से संयम पालन दुष्कर हो जाता है तथा हमारे संयम की रक्षा हम स्वयं ही कर सकते हैं, कोई अन्य हमारे संयम की रक्षा अथवा घात में समर्थ नहीं।

इसी कारण हमारे आ. पं. जी साहब प्रत्येक विषय का आवश्यक ज्ञान रखते थे, जिसमें आत्मज्ञान के साथ श्रावकाचार, शिष्टाचार, पाक कला, सिलाई यहाँ तक कि आयुर्वेद का ज्ञान भी सम्मिलित है।

एक दिन पं. जी साहब, डॉ. दीपक जी (जयपुर) से आयुर्वेद के संबंध में चर्चा कर रहे थे। चर्चोपरान्त पं. जी साहब बोले–शरीर का लक्ष्य है, इसलिए कितना समय इस चर्चा में चला गया, यदि शरीर न हो तो रोग संबंधी कोई चर्चा ही न हो, अतः अपने को सदाकाल 'अशरीरी' देखो। जिसे देखने पर अन्य कुछ भी देखने की वांछा नहीं रहती, फिर भी ज्ञान में तीन लोक स्पष्ट रूप से झलकने लगता है। अहो! ऐसे होते हैं ज्ञानी।**'जल में रहकर जल से न्यारे।'**

47. करुणा का सागर

आ. पं. जी साहब ने कारीगर–मजदूर भाइयों के लिए गुड़–मूंगफली वितरित किए। एक वृद्ध बाबा जी, जिनकी दंत पंक्तियों ने उनका साथ छोड़ दिया था, बोले–मुझसे मूंगफली नहीं खाईं जा सकेंगीं।

ठीक है आप गुड़ चूसो और उन्हें गुड़ दे दिया। शाम को पं. जी बोले–बाबा मूंगफली नहीं खा सकते, उन्हें पीसकर दे दें।

मैं मूंगफली पीसकर उसमें गुड़ मिलाने लगा। मुझे विचार आया कि कोई अपने बुजुर्गों के संबंध में भी इतना नहीं सोचता होगा कि इन्हें कोई परेशानी है तो उसका हल भी होगा और पं. जी साहब एक मजदूर के लिए भी इतना...। वास्तव में वे बाबा को मजदूर नहीं, अपने समान एक जीव ही देख रहे होंगे। धन्य है इनका जीवन! जिनके उर में प्राणीमात्र के प्रति प्रेम/करुणा का सागर भरा है।

जब मैंने बाबा से कहा–आपके लिए पं. जी साहब ने मूंगफली पीसकर पहुँचाई है तो उन्होंने बड़े हर्ष से दोनों हाथ माथे से लगाकर मूंगफली अंगीकार की। बोले–महात्मा हैं वे।

48. दूसरों के दुख अपने ही हैं

निर्माण कार्य चल रहा था, पं. जी साहब ने देखा एक मजदूर भाई की बनियान बहुत फट गई है, दूसरे दिन उन्होंने बनियान देने के लिए बुलाया तो मजदूर भाई बोले–महाराज! मुझे तो बाबा जी (आ. हेमराज बाबा जी) ने आधे बाँह की बनियान दे दी है। पं. जी ने कहा–यह भी रख लो पूरे बाँह की है, सर्दी बच जाएगी।

महाराज! मेरा काम तो इसी से चल जाएगा। आप किसी दूसरे भाई को दे दें तो उसका भी भला हो जाएगा।

पं. जी बोले–देखो! यह है हमारे देश की संस्कृति। मात्र अपना पेट ही सब कुछ नहीं, दूसरों के दुःख भी अपने ही हैं।

वात्सल्य की वृद्धि के लिए अपने सुख बाँटना सीखो, दूसरों के दुख बाँटना सीखो।

49. जीवन का भाव

गुरुकुल के नन्हे विद्यार्थी बैठे थे, पं. जी साहब ने उन्हें फल वितरित किए पश्चात् एक बालक कचड़े के साथ पॉलीथिन भी फेंकने लगा। पं. जी साहब ने रोकते हुए पूछा–बताओ बच्चो यह पॉलीथिन किस भाव आई।

एक बच्चा–ये तो मुफ्त में आई।

पं. जी–नहीं, फलों के साथ तुलकर आई है तो जिस भाव के फल हुए उसी भाव में पॉलीथिन भी आई। यदि इसमें बादाम आते तो बादाम के भाव की होती, मिट्टी आती तो मिट्टी के भाव होती।

इसीप्रकार तुम्हारे जीवन का क्या भाव है ? जैसा तुम परिणाम करोगे, वैसा भाव होगा।

पाप करोगे तो दुख होगा, पुण्य करोगे तो अनुकूलता मिलेगी, धर्म करोगे तो सुख मिलेगा।

क्या चाहते हो ? इसका विचार करो।

''रुंकन बिकाया भाग वश तैं, देव इक इन्द्रीभया।
उत्तम मुआ, चाण्डाल हूवा, भूप कीड़ों में गया।।''

50. परिणति धुल जाए

एक भाई बाल बनवा कर आये। कपड़े धोने के बाद पं. जी साहब के पास पहुँचे। पं.जी साहब हम बाल छंटवा आये और कपड़े भी धो लिए।

पं. जी बोले–बाल तो छंट गये, विकार भी छंट गये या नहीं। परिणति धोई या नहीं ?

अरे भाई ! एक बार परिणति धुल जाए तो सर्व विकार छंट जावेंगे। निर्मलता प्रगट हो जाए तो जीवन सार्थक हो जाए।

51. निर्ग्रन्थों की गाड़ी

अचानक बने कार्यक्रम के कारण मैं साइकिल द्वारा अमायन से मौ पहुँचा और पं. जी साहब मोटर साइकिल से।

मौ पहुँचकर पं. जी साहब ने पूछा–कोई परेशानी तो नहीं हुई ?

परेशानी तो नहीं हुई, बस यह डर लग रहा था कहीं पंचर न हो जाए अन्यथा रास्ते में ही रुकना होगा।

पं. जी साहब बोले–सबसे बढ़िया गाड़ी तो पाँव–गाड़ी है, न पंचर का भय, न डीजल–पैट्रोल का, न खराब होने का भय। किसी भी प्रकार की पराधीनता नहीं।

अरे भाई! यह तो निर्ग्रन्थों की गाड़ी है जो किसी के आधीन नहीं। संसार तो पराधीनता का ही मार्ग है। 'निर्ग्रन्थता का मार्ग तो स्वाधीन मार्ग है।'

''निर्ग्रन्थों का मार्ग, हमको प्राणों से भी प्यारा है।''

52. सच्चा सुख

रात्रि का समय, एक ब्रह्मचारी भाई के संबंध में चर्चा कर रहे थे। पं. जी बोले–बहुत भला जीव है, लोगों को भी उनके प्रति धर्म स्नेह है, उसका कारण है कि वे सीधे–सादे ईमानदार व्यक्ति हैं। सभी के सुख–दुख में निर्वांछकपने सहायी होते हैं। परोपकार की भावना है, उदारता है; इसलिए सब प्रेम, इज्जत देते हैं। विनय–भक्ति है सो उनकी वाणी से सब प्रभावित होते हैं। वास्तव में तिरस्कार तो कषाय से होता है, ये कषायें आत्म तिरस्कारी परिणाम हैं। जो क्रोधी, मानी हैं,

उसका सब तिरस्कार करते हैं और जो विनयी होता है, मृदुभाषी होता है, उसका सब सम्मान करते हैं। **गुणों का सम्मान होता है, दोषों का तिरस्कार होता है।**

"कषायें आत्म तिरस्कारी होने से दुखरूप ही हैं, इन्हें दूर से ही छोड़ना योग्य है।"

पं. जी बोले–इन्द्रिय सुख की कामना वाले जीव को तत्त्वज्ञान की सच्ची रुचि नहीं होती।

जब उसे बाहर में ही सुख लगता है तो तत्त्वज्ञान की प्राप्ति का उद्यम क्यों करेगा ? यह अच्छा है, हमारी दुकान चल रही है, हम तो बहुत मजे में हैं, सब अनुकूलतायें हैं। यदि धार्मिक व्यक्ति भी कहेगा तो मात्र इतना कि यह मंदिर अच्छा है, देखते ही आनंद आ जाता है, बहुत विशाल है। विधान में तो आनंद आ गया। ऐसे पंचकल्याणक तो कभी देखे ही नहीं। बस यहीं तक सीमित रह जाता है परन्तु सच्चे सुख को नहीं जानता। सच्चा सुख आत्मा के आश्रय से आता है।

"संसार महादुख सागर के प्रभु दुखमय सुख आभासों में।"

53. इष्ट–अनिष्ट

पूस माह की सर्दी, जिसकी शक्ति को देखकर सूरज भी कुछ दिनों के लिए छिपकर बैठ जाता है। ऐसी ही एक शाम को जब हम आ. पं. जी साहब के साथ समस्त दोषों से रहित देवाधिदेव जिनेन्द्र परमात्मा के दर्शनार्थ जिनमंदिरजी पहुँचे तो वहाँ नन्हे चाचा (एक वृद्ध साधर्मी) चटाईयाँ बिछा रहे थे, जिससे पैरों में सर्दी न लगे।

पं. जी साहब बोले–अरे भाई ! इस संगमरमर को क्यों ढक रहे हो। चाचा जी हाथ जोड़ते हुए बोले–पं. जी बहुत सर्दी है, ठंड के कारण खड़ा नहीं हुआ जाता सो चटाईयाँ बिछा दे रहे हैं। यह संगमरमर पहले तो बहुत सुंदर है यही लगता था, अब सर्दी के कारण पैर नहीं रखा जाता। पं. जी बोले–इसे इष्ट माना सो इससे दुख हुआ। जिसे भी इष्ट मानता है उससे दुख ही होता है। स्त्री को इष्ट मानता, पुत्र को इष्ट मानता है, जब वे बात नहीं मानते तो दुख होता है। धन को इष्ट मानता है, धन चला जाता है तो दुख होता है। भाई ! आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी में भी इष्ट की कल्पना करेगा तो दुख ही होगा।

एक आत्मा ही सुख स्वरूप है, सुख का कारण है; इसलिए उसी में अपनत्व करो, उसी से प्रीति करो।

54. अशिक्षा

एक साधर्मी भाई आये हुये थे, कुछ ऐसा प्रसंग बना कि आपने कहा–हमने बरासों क्षेत्र के दर्शन नहीं किए। पं. जी साहब बोले–चलो दर्शन करा लायें। बस बात ही बात में बरासों पहुँच गये। जहाँ वर्तमान जिनशासन नायक देवों के देव श्री महावीर भगवान के दर्शन कर नेत्रों को सफल किया।

लौटते समय पं.जी साहब बोले–कितनी गंदगी है गाँव में। ग्रामीण अपने हाथ से अपना चबूतरा भी साफ नहीं रखना चाहते। इस सब का कारण अशिक्षा है। अधिकारी यहाँ आना नहीं चाहते, शिक्षक

पढ़ाना नहीं चाहते, सब कार्य कागजों में ही हो जाते हैं, भ्रष्टाचार फैला हुआ है। इन्हें कोई बताए, कहकर कराये तो ये भी स्वच्छ रखें। कम से कम अपना चबूतरा तो साफ-स्वच्छ रख ही सकते हैं, क्यों ?

हाँ ! रख तो सकते हैं।

पं. जी बोले-नहीं रख सकते। न होते हुए कार्य को करने में कोई समर्थ नहीं। उसका इसीप्रकार परिणमन होना है, फिर भी इनका प्रमाद है, अज्ञान है।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्त्ता नहीं-यह बात प्रमाद पोषण के लिए नहीं है; अतः आलस्य छोड़ो, क्रिया सुधारो, ज्ञानाभ्यास करो, यही शान्ति का मंत्र है।

55. कर्म फल

'दाने-दाने पर लिखा है, खाने वाले का नाम।'

उक्त कहावत को चरितार्थ करती हुई एक घटना नेत्रों के सामने दर्शित हुई।

हुआ यह कि एक कौवा चोंच में पंराठे का टुकड़ा दबाये आकाश में उड़ा जा रहा था। अचानक वह टुकड़ा गिर पड़ा, जहाँ पं. जी साहब एवं कुछ साधर्मी चर्चा कर रहे थे। चींटियों की घ्राण इन्द्रिय अधिक प्रबल होती है। थोड़ी ही देर में चींटियों के समूह ने उस पंराठे पर अधिकार जमा लिया और सामर्थ्यानुसार उसमें से छोटे-छोटे टुकड़ों को ले जाने लगीं। पं. जी साहब ने कहा-देखो ! चींटियाँ भी

पंराठा लिए जा रही हैं। एक साधर्मी भगाने को हुए तो पं. जी साहब रोकते हुए बोले–ले जाने दो, क्यों अन्तराय करते हो। यदि रोकोगे तो हो सकता है इसके फल में कभी हमें भी कोई खाने से रोक दे। इन्होंने कभी किसी को पंराठा खिलाया होगा सो आज इन्हें भी मिला।

सोनू भैया ने वह टुकड़ा उठाकर दीवाल पर रख दिया, जिससे किसी का पैर न पड़े। कुछ देर बाद एक गिलहरी आई और खाने लगी।

पं. जी साहब ने कहा–देखो! बनाने वाले ने सोचा भी नहीं होगा कि इस पंराठे में से कुछ भाग चींटियों का है, कुछ गिलहरी का और पता नहीं लाने वाले (कौवे) को भी इसमें से कुछ मिला या नहीं। कहाँ का पंराठा, किसके लिए, किसके द्वारा, किस प्रकार से, कहाँ पहुँच गया ? कौन कल्पना कर सकता है।

सत्य बात तो यह है कि जिसके उदय की वस्तु है, वह उसके पास जिस–तिस प्रकार से पहुँच ही जाती है।

''अपने उपार्जित कर्मफल को जीव पाते हैं सभी।
उसके सिवा कोई किसी को कुछ नहीं देता कभी।।''

''जिस द्रव्य का, जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जिस विधि से, जो परिणमन होना निश्चित है, वह उसीप्रकार होता ही है। उसमें परिवर्तन करने में कोई समर्थ नहीं।''

यदि कोई उसे अपने अनुसार परिणमाना चाहे तो वह आकुलता से दु:खी ही होगा।

56. सच्ची प्रभावना

उस समय आ. पं. जी साहब झांसी थे।श्री गेंदालाल बाबा जी एवं मेवालाल भगत जी आपके पास पहुँचे। पं. जी चलो बुन्देलखण्ड की यात्रा कर आवें।

चलो!

झांसी से टीकमगढ़ पहुँच गये। एक धर्मशाला में जाकर पूछा– कमरा चाहिए।

कमरा तो खाली नहीं है, अलमारी में सामान रख लो, छत पर सो जाना।

सामान रखकर जिनदर्शन हेतु मंदिर जी पहुँचे। बहुत भक्ति भाव से दर्शन किए तदुपरान्त बाबा जी बोले–कुछ देर शास्त्र वांच लो।

आपके प्रवचन से श्रोता बहुत गद्‌गद् हुए, उन्होंने ऐसा पहले कभी नहीं सुना था। प्रवचन के पश्चात् सभी ने आप से परिचय किया और सामान मंगाकर वहीं एक कमरे में ठहरने का प्रबंध कर दिया। इसप्रकार उनके आग्रह से आपने अठारह दिन वहाँ रहकर सभी को मंत्र मुग्ध कर दिया। आते समय समाज ने दशलक्षण पर्व के लिए आपसे अनुरोध किया, जिसे स्वीकार कर आपने उस क्षेत्र में धर्म प्रभावना कर नई जाग्रति फैलाई। फिर क्या था, सभा में नित प्रति इतनी वृद्धि हुई कि स्थान की कमी खलने लगी।

इसप्रकार बुंदेलखण्ड क्षेत्र में आपके द्वारा खूब प्रभावना हुई। आपका अनुसरण कर लगभग पाँच बहनों ने ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया।

57. मीठा पानी

अमायन के कुएँ का पानी बहुत खारा था। पीना तो दूर नहाने योग्य भी नहीं था तब श्री जी के प्रक्षाल एवं पं. जी के चौके के लिए बहुत दूर से कंधों पर रखकर लाना पड़ता था। पं. जी की भावना थी कि अपने कुएँ का पानी मीठा कैसे हो ? इसके सुधार हेतु बारिश के जल का कुएँ में हारवेस्टिंग किया।

कुँए का पानी मीठा हो गया, खबर सुनते ही इतना उल्लास, इतना हर्ष कि जिसका कोई पारावार नहीं। मैं स्वयं एक डोल में पानी छानकर लाया। पं. जी साहब ने सभी लोगों को बुला-बुलाकर पानी चखाया। जो भी दिखाई देता उसे बुलाकर पानी चखाते। इतनी खुशी कि देखते ही बनती थी। आखिर क्यों न हो, इतने दिनों की अभिलाषा, मेहनत आज सफल जो हो गई थी। आखिर अब भगवान के प्रक्षाल के लिए सर्दी, गर्मी, बारिश में कोई परेशानी नहीं रहेगी। सभी को मिठाइयाँ बाँटी गईं। थोड़ी ही देर में खबर ने समूचे गाँव में आग की तरह अपने पैर पसार लिए। हम भाइयों ने पं. जी साहब से आज्ञा लेकर इसी कुँए से पानी भरने का निर्णय लिया। सुबह जब हम पानी भरने पहुँचे, उससे पहले ही वहाँ पानी भरने वालों का समूह एकत्रित था। पं. जी साहब भी आये और उन्होंने स्वयं अपने हाथों से एक बाल्टी पानी खींचा और छनवाया।

उस दिन इतना हर्ष छाया हुआ था कि जिसके वर्णन की सामर्थ्य इस कलम में तो नहीं।

58. अपार वात्सल्य

सर्दी का मौसम, प्रातः 3 बजे से पूर्व ही पं. जी साहब के नेत्र युगलों ने निद्रा से अपना हाथ झटक लिया था। कुछ आहट पाकर मैं भी उठ बैठा। पूछा क्या बात है ? अभी तो सुबह होने में देर है। पं. जी–कुछ नहीं, बस आँख खुल गई। मैंने कहा–कल बहिनें बता रहीं थीं–घर पर सभी की सेवा करते हैं। काम कुछ अधिक हो जाने से दिन में स्वाध्याय के लिए समय नहीं निकल पाता। सर्दी के दिन हैं, जल्दी दिन ढल जाता है सो सुबह–शाम स्वाध्याय करते हैं। ऐसा लगता है स्वाध्याय ही करते रहें।

पं. जी बोले–भैया! **'परिग्रह का विस्तार अनर्थकारी है।'** देखो! दोपहर में चाची बैठीं कैसे चिंतन में लीन थीं। सोचो ठंड तो इनके लिए भी है, अकेले अपने लिए ही नहीं है फिर भी बैठीं थीं। कैसे हो–कैसे हो ? ऐसा सोचते रहने से कुछ नहीं होगा। बैठेंगे तब काम होगा। स्वाध्याय मात्र पढ़ने का नाम नहीं, चिंतन का नाम है।

दूसरी बात भोजन भी सात्विक ही हो तो समय की भी बचत है। काजू, किशमिश आदि अधिक मँहगी एवं कोल्ड की वस्तुओं का ज्यादा उपयोग नहीं हो, ज्यादा पकवान मिष्ठान नहीं हों। आगे तुम लोगों का इतना पुण्य भी नहीं है और सब जगह जाना भी है। यदि दूसरों से अपेक्षा होगी तो कषाय बढ़ेगी। **वास्तव में ये विषय और कषाय ही दुख के मूल कारण हैं।**

तुम लोगों में ख्याति–लाभ की अभिलाषा नहीं होना चाहिए। खूब स्वाध्याय करो, चिंतन करो, खूब प्रभावना करो।

वास्तव में भक्ति से जो विशुद्ध परिणाम होते हैं, उसी से प्रभावना होती है।

तुम सब लोग मिलकर खूब आराधना प्रभावना करो। भगवान की भक्ति करो, प्रसन्न रहो। हम से जितनी बनेगी सुविधायें, हम जुटा देंगे लेकिन प्रसन्न रहो। तुम सब लोगों को देखकर हमें भी प्रसन्नता होगी।

वास्तव में पं. जी साहब की महिमा कौन गा सकता? जितनी कही जाए वह तो सूर्य के सामने दीपक भी नहीं। वात्सल्य तो उनके हिय में इतना भरा है जो शायद बनता नहीं है; अतः बाहर झरता रहता है। पं. जी साहब के वात्सल्य की माप वही कर सकता है जिसने उस रस का आस्वादन किया है। अनुमान उस मूल्य तक पहुँचने में समर्थ नहीं।

59. संस्कार

सर्दी के मौसम में जमीन बहुत ठंडी हो जाती है, अतः बैठने के लिए टाट के गद्दे बिछा लेते थे। एक शाम सुनील भैया ने कहा–पं. जी! गद्दे बिछा दें? बिछा दो।

सुनील भैया गद्दे बिछाने लगे, मैं वहीं बैठा था, पं. जी के पैर दबा रहा था, एक भाई खड़े थे। पं. जी ने कहा–भैया! गद्दे बिछा रहे हैं तो तुम्हें कहना चाहिए कि भैया! हम बिछाए देते हैं। तुम लोग खड़े

हो और सुनील भैया गद्दे बिछा रहे हैं। वे तुम सबसे बड़े हैं। इतने दिन में तुम लोगों ने क्या सीखा?

सुनील भैया ने पूछा–पं. जी आपके सिर का दर्द कैसा है?

बोले–दर्द तो इन बातों से होता है, क्या–क्या सिखाया जाए। असल में दर्द तो राग से होता है, हमें राग है सो हमें दर्द होता है।

अयोध्या लौटने पर माता ने लक्ष्मण से पूछा–पुत्र! जब तुम्हें शक्ति लगी थी तब कैसी वेदना हुई?

लक्ष्मण बोले–माता! मैं तो निश्चिंत होकर सो रहा था, पीड़ा तो भैया राम को हुई थी। ऐसा ही है जिसे राग है उसे पीड़ा है।

दर्द तो इसका है कि संस्कार नहीं पड़ रहे। बड़ों का आदर करना चाहिए, छोटों को स्नेह देना चाहिए। ये बातें दिखाई दें तो प्रसन्नता रहे।

तुम लोगों ने कभी किसी से कहा–चलो आज साथ में पूजा करेंगे, भक्ति करेंगे, आज भजन पढ़ेंगे? तो .... ? फिर एक भाई से बोले–बड़ों का आदर किया करो। तुम्हें भैया से कहना चाहिए कि भैया! आप रहने दो, हम बिछाते हैं।

फिर हंसकर बोले–बड़ों का आदर करोगे तो आशीष मिलेंगे।

कोई भी कार्य हो बड़ों के आशीष से ही सफल होते हैं और फिर संस्कार कब पड़ेंगे, सीखेंगे कब? ये सब तो व्यवहारिक बातें हैं। जब तक लौकिक व्यवहार ही नहीं होगा तो परमार्थ कहाँ से आयेगा? इसलिए विवेक जगाओ। आत्मा को अकर्त्ता देखो।

60. आँखों के डॉक्टर

एक विद्यार्थी हाई स्कूल की परीक्षायें देने के उपरान्त अमायन आया। पं. जी साहब ने उससे पूछा–कहो भाई ! छुट्टियों में क्या किया ?

विद्यार्थी–चश्में की दुकान पर बैठते हैं, सीख रहे हैं।

पं. जी–तो देख लेते हो, कौन सी दृष्टि खराब है, कौन सी अच्छी है ? पास की या दूर की ?

अभी सीख रहा हूँ।

अच्छा हमारी कौन सी खराब है ?

आपकी तो दोनों अच्छी हैं।

अरे ! यदि अच्छी होती तो चश्मा क्यों लगता। अच्छा ये बताओ तुम्हारी कौन सी खराब है ?

मेरी कोई नहीं। हमारे तो चश्मा भी नहीं लगता, सब साफ दिखता है। पं. जी–गलत। देखो ! आँखें पास में हैं और सबसे पास में आत्मा है। आँखों से आत्मा दिखती है ?

नहीं।

तो पास की दृष्टि खराब है और दूर की दृष्टि भी खराब है, कैसे ? जो परिणाम होते हैं, उनके फल का विचार नहीं आता, जिससे पापों की संतति चलती रहती है, अतः दूर दृष्टि भी खराब है और तुम्हारी तो दोनों आँखें खराब हैं, कैसे ? तुम्हें दो का एक दिखता है।

नहीं ! मुझे तो साफ दिखता है।

अच्छा, आत्मा और शरीर दो हैं परन्तु एक ही मानते हो। अब डॉ. के पास जाना और अपनी बीमारी बताना।

मैंने कहा–इसके डॉ. तो आप ही हो। जो बता सकते हो कौन सी दृष्टि खराब है और उस पर कौन सी ऐनक लगेगी। इसका उपाय भी आप ही बता सकते हो; अतः कृपा करो।

61. खाली हाथ नहीं आना

भिण्ड से एक भाई आया। पं. जी साहब ने पूछा–क्या लाए ?

कुछ नहीं।

कुछ नहीं, अरे कोई खाली हाथ आता है क्या ? पहली बात। देव, गुरु, राजा और वैद्य के समीप खाली हाथ नहीं जाते। दूसरी बात यहाँ आये हो तो कुछ जिज्ञासा, भक्ति, विशुद्धि लेकर तो आये ही हो, अन्यथा यहाँ कैसे आते ?

मंदिर जी जाते हैं तो कुछ लेकर जाते हैं तो क्या चावल लेकर गये, गंधोदक लेकर आ गये, ऐसा नहीं है। मंदिर जी खाली हाथ जाना नहीं, वहाँ से खाली हाथ आना नहीं। क्या मतलब हुआ ?

भक्ति, बहुमान लेकर जाना, पुण्य, विशुद्धि लेकर आना। पुण्य भी इसी का मिलता है, मात्र चावल का नहीं। हमने कहा–नमस्कार करो–हाथ जोड़कर सिर झुका दिया। अब यह विचार करो कि ये शरीर, हाथ, सिर हमारे हैं ही नहीं, अब नमस्कार करो।

अब जो नमस्कार होगा वही सच्चा नमस्कार है। वही अपना नमस्कार है और हाथ जोड़कर सिर झुकाने पर भी फल तो इसी नमस्कार का मिलेगा, मात्र हाथ जोड़ने का नहीं, तभी तो एक सी क्रिया होने पर भी फल तो परिणाम अनुसार ही प्राप्त होता है।

62. रत्नत्रय की गाड़ी

अमायन से सागर जा रहे थे। मार्ग में पवागिरि सिद्ध क्षेत्र के दर्शन किए। दिवा भास्कर अपनी नियति के अनुसार अस्ताचल की ओर गतिमान हो रहा था, अतः कुछ जलपान कर यात्रा को अविरोध रखने हेतु गाड़ी में बैठे। अभय भाई साहब बोले–अब गाड़ी चलाना सीख लो, हमें भी कुछ आराम हो जाएगा, फिर हम पीछे बैठा करेंगे। हमने कहा–सिखाना तो आप ही को है, जब आप सिखा दें तभी आपको आराम मिल जाएगा।

पं. जी बोले–भाई ! इस गाड़ी में क्या धरा है ? गाड़ी चलाना है तो रत्नत्रय की गाड़ी पकड़ो। मोक्षमार्ग में चलने वाली गाड़ी सीखो। वह गाड़ी सम्यग्दर्शन से प्रारम्भ होती है और वैराग्य भावना भाने से गतिशील होती है। उसी से गंतव्य मिलेगा/लक्ष्य मिलेगा तब वह मंजिल मिलेगी जहाँ से कहीं भी जाने की अभिलाषा मिट जाएगी।

63. घर

पं. जी साहब के कोमल एवं वीतराग प्रशम मुद्रा का ही जिन पर एकाधिकार है–ऐसे नेत्र युगलों पर किसी रोग ने अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया, जिस कारण वेदना छू–छू कर उन्हें अपनी सत्ता का एहसास करा रही थी। कच्चा दूध नेत्रों के लिए लाभदायक होता है–ऐसा विचार कर उपचार हेतु मैं दूध की एक–एक बूंद आँखों में

डाल रहा था तभी एक साधर्मी भाई आये। पं. जी साहब ने आहट पाकर पूछा–कौन है ? उन्होंने अभिवादन द्वारा अपनी उपस्थिति का संकेत दिया।

पं. जी–कहो भाई ! कहाँ से आ रहे हो ?

साधर्मी–जी ! घर से ही आ रहा हूँ।

पं. जी–घर से तो मुनिराज आते हैं या ज्ञानी आते हैं। घर से ही आते हैं, घर की ही चर्चा करते हैं, अपने घर रहने की प्रेरणा करते हैं, उपदेश देते हैं, स्वयं भी अपने घर में रहते हैं।

हम सभी तो अपने घर को भूले बैठे हैं। अब बताओ घर से आ रहे हो या.... !

फिर स्वयं ही गुनगुनाने लगे–

तेरे घर की बात तो ज्ञानी तुझे बतावें रे।

तेरे हित की बात रे संत तुझे समझावें रे !!

पं. जी साहब की एक–एक बात रत्नतुला पर रखी हुई होती है, जिसका बहुत सूक्ष्म अंश भी इधर–उधर नहीं होता है–ऐसे जौहरी की संगति से रत्नों का पारखी हो जाना बहुत सुगम है। अतः.... !

'निज घर बिना विश्राम नाहीं।'

विश्रान्ति निज घर में ही मिलती है और निज घर की पहिचान ज्ञानियों के मुखारविन्द से प्रस्फुटित उपदेश से होती है।

नहिं जाना नहिं जाना इनके,

चरण छोड़ नहिं जाना रे।

64. सजल नेत्र का राज

आ. पं. जी साहब की यह विशेषता रही कि एक स्थान से (ग्रामादि से) अन्य स्थान पर पहुँचते तो सर्व प्रथम भगवंतों के दर्शनार्थ मंदिर जी जाते और जब वहाँ से प्रस्थान करते तो दर्शन करके ही आगे गतिमान होते थे।

सागर से अमायन वापिस आ रहे थे, पं. जी साहब, वीतरागी भगवंतों के पादाम्बुज की भक्ति/वन्दना हेतु मंदिर जी पहुँचे। मैं भी उनके चरणों का अवलोकन करते हुए उनके पीछे हो लिया। मन में यही भावना बसी थी कि ये चरण मेरे हृदय में इसप्रकार अंकित हो जावें कि मैं भी आपके ही पथ का पथिक होकर गंतव्य की प्राप्ति कर लूँ।

जब पं. जी साहब धोक देकर उठे तो उन्होंने कपड़े से अपने नेत्र पोंछ लिए, जो किसी कारण वश छलक आये थे और पं. जी साहब लोगों की नजरों से उन्हें बचाना चाहते थे परन्तु मेरे नेत्रों ने उनके नेत्रों की भाषा को पढ़ लिया था। मैं कारण जानने को उत्सुक था किन्तु सभी साधर्मियों की उपस्थिति मेरी उत्सुकता में बाधक थी। गाड़ी में बैठकर कुछ ही दूर निकले थे कि प्रसंग वश मैंने कहा- आपके आने से सभी के नेत्र सजल हो आये थे। तब पं. जी साहब बोले-दर्शन करने पर मेरे नेत्रों ने भी अन्दर की भागीरथी को बाहर लाने का प्रयत्न किया था। कारण क्या हुआ कि इस बार सागर आने पर मैं थोड़ी सी अव्यवस्था के कारण प्रवचनों में पहले पहुँचता, पूजन बाद में करता था और प्रवचन के बाद समय अधिक हो जाता, अतः

विकल्प रहता कि मेरे कारण सभी को देर हो रही है। गर्मी अपने पूरे तेज पर है; अत: 20 मिनिट में ही पूजन करके लौट आता था सो मन संतुष्ट नहीं होता था। आज जब भगवान के सामने बैठे थे सो विकल्प आ गया। सोचने लगे कि भगवान को छोड़कर जा रहे हैं, सो नेत्रों से रहा नहीं गया और हृदय में प्रवाहित भागीरथी नयन पथ पर आ गई।

इतना सुनते ही हमारी आँखें भी नम हो गईं और यही भावना जागृत हुई कि हे पूज्यवर! आपके नेत्र युगलों में विराजित ये अनुपम मोती कभी भी पृथ्वी से स्पर्शित होकर धूमिल न हो जाएँ।

धन्य हैं आप और धन्य हैं वे विचार जो सदैव आत्महित एवं परोपकार के लिए ही आपके मन मस्तिष्क में जन्म लेते हैं, जिससे मृगतृष्णा में भटकने वाले जीवों को इस मरुस्थल (निकृष्ट काल) में भी वात्सल्य का दरिया दिखाई देता है।

जिनशासन की पावन ध्वज के नीचे यह दरिया सदा भरा रहे और संसार के समस्त प्राणी इसके अमृत का आस्वादन कर तृप्त रहें।

''जैनं जयतु शासनम्।।''

65. दूर दृष्टि

'दूरदृष्टि पक्का इरादा' यह उन्नति का मंत्र है। दूरदृष्टा व्यक्तियों से असफलता कोसों दूर रहती है। ऐसे दूरदर्शी व्यक्तित्व के धनी पूज्य पं. जी साहब कहते हैं कि शिक्षा माने क्या? **सोचने-समझने की शक्ति का विकास होना वह शिक्षा है।** यदि हमारी विचार शक्ति संकीर्ण है तो उन्नति संभव नहीं। हम जो विचार कर रहे हैं, जो वचन

बोल रहे हैं अथवा जो हमारी प्रवृत्ति है, उसका फल क्या है? इसमें किसका हित होगा? किसका अहित होगा? यह भी विचारणीय है।

एक भाई के द्वारा पं. जी के कमरे की सफाई करते समय अलमारी में रखा बल्ब प्रमाद वश फूट गया। उस बल्ब के संबंध में पं. जी साहब तीन चार बार मुझसे कह चुके थे कि इसे कवर में रख दो अन्यथा फूट जाएगा परन्तु मैं प्रमाद वश वह कार्य न कर सका और उसका परिणाम आज सामने था।

पं. जी साहब बोले–मैंने तो पहले ही कहा था लेकिन किसी ने भी सुनी नहीं, अनसुनी कर दी। अब एक बल्ब और बनेगा, रुपये लगेंगे यह बात नहीं है, रुपये तो खर्च होंगे ही परन्तु 15 रुपये के बल्ब के लिए कितने मजदूर लगे होंगे? बनाने वाले, सफाई वाले, पैकिंग वाले, प्रचार वाले, बेचने वाले और भी, उन सबका श्रम व्यर्थ चला गया, मात्र तुम्हारी थोड़ी सी लापरवाही से। थोड़ी सी असावधानी में तो बड़ी–बड़ी दुर्घटनायें घट जाती हैं और जीवनभर को पश्चाताप छोड़ जाती हैं।

जो कांच फूट गया, वह भी न जाने कहाँ पड़ा होगा? किसी के चुभ जाए, कोई पशु खा जाए तब मरण का प्रसंग बन जाए। सब जरा सी लापरवाही से।

दूर दृष्टि नहीं है इसलिए कुछ दिखाई नहीं देता। यह लगता है– इसमें क्या हो गया? अरे! फूट गया दूसरा आ जाएगा। 15 रुपये के बल्ब के पीछे इतना सब कहने की क्या जरूरत?

अरे भाई ! यह बात नहीं है परन्तु इतना सब विचार कर देखो। तुम बहुत परिश्रम करो और सब निरर्थक हो जाए तब तुम्हें कैसा लगेगा ?

विचार करो ! दूर, दृष्टा बनो। दूर दृष्टि वाला ही दिव्य दृष्टि होता है।

66. दृष्टि का फेर

सोनगढ़ से एक साधर्मी भाई पं. जी साहब के प्रवचन लाभार्थ पधारे। कुछ यहाँ की कुछ वहाँ की चर्चा करते-करते बोले कि-सोनागिर जी में बहुत पैसा बर्बाद हुआ है, थोड़े में भी काम चल सकता था। तदुपरान्त बोले-बम्बई के एक सेठ ने सोनगढ़ में इतने रुपये लगा दिए, ये सुविधा करा दी, भोजनालय बनवा दिया। अरे साहब वे तो एक साल में दस लाख रुपये कमाते हैं।

बहुत देर तक सुनने के पश्चात् पं. जी साहब बोले- भाई ! लोग कहते हैं एक साल में दस लाख रुपये कमाते हैं। हम तो कहते हैं-'दस लाख कमाने में एक साल गवां दी। अरे ! बहुत उपयोग बर्बाद हुआ। यदि इतना उपयोग, समय, शक्ति आराधना में लगती तो कहाँ तक पहुँच जाते।

शायद कल्याण के मार्ग को पा लेते परन्तु अभी तो उस मार्ग से भी बहुत दूर हैं तब मंजिल कहाँ ?

धन्य है ! ज्ञानियों की दृष्टि अलौकिक होती है, उन्हें किसी की निंदा एवं प्रशंसा में इष्टानिष्ट की कल्पना नहीं होती।

67. आराधना ही सेवा

दीदी वापिस जा रहीं थीं, उससे पूर्व पूज्य पं. जी साहब को वंदना करने हेतु आईं। वदंना करने के पश्चात् बोली–हमारे योग्य कोई सेवा हो तो आज्ञा करें।

पं. जी–आराधना करो, यही सेवा है।

आराधना और प्रभावना ही जिनशासन की सेवा है और प्रभावना भी आराधना के लिए ही है। विषय–कषाय, व्यापारादि से निवृत्त हो और आराधना में लगो।

आचार्य शान्तिसागर जी के पास सेठ साहू शान्तिप्रसाद जी आकर बोले–महाराज ! हमारे योग्य कोई सेवा बताइए।

मुनिश्री–कल्याण में लगो, आराधना करो,भगवान पंच परमेष्ठी की पूजा, भक्ति करो, स्वाध्याय करो।

महाराज ! वह सब तो ठीक है, कुछ धन लगाना चाहता था।

भाई ! उसकी तुम जानो। हमारे लिए तो आरंभ की अनुमोदना भी पाप है।

दीदी ने भी अंजुली जोड़कर उपदेश ग्रहण किया और अनमोल रत्न की भाँति उस उपदेश को सुरक्षित रख लिया।

68. चरण स्पर्श करो

खनियाँधाना से कुछ साधर्मीजन आये। सभी ने पं. जी साहब के चरण स्पर्श किये।

पं. जी साहब ने आशीर्वाद स्वरूप शब्द कहे–

'चरण स्पर्श करो।'

उन्होंने पुनः चरण स्पर्श कर लिए।

पुनः पं. जी–'चरण स्पर्श करो।'

बोले–हमने कर लिए। अभी–अभी तो दो बार चरण स्पर्श किए।

पं. जी–किसके चरण स्पर्श किए ? जो चरण तुमने स्पर्श किए, वे मेरे चरण हैं ही नहीं। मैं तो इन चरणों से भिन्न हूँ।

सभी ने हाथ जोड़कर सिर झुका लिया।

उनमें से एक साधर्मी बोले–जब ये चरण आपके नहीं तब आपने चरण स्पर्श करने को क्यों कहा ?

पं. जी–'चरण माने आचरण और आचरण श्रद्धान–ज्ञान होने पर होता है अर्थात् सम्यक् श्रद्धा, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् आचरण। ज्ञानियों के श्रद्धा, ज्ञान, आचरण को स्पर्श करो।

इसका नाम है 'चरण स्पर्श करो।' सभी ने पुनः एक बार चरण स्पर्श किए बोले–हमने तो कभी ऐसा विचार ही नहीं किया।

पं. जी–भाई ! मैं आत्मा हूँ, आत्मा को पैर होते नहीं। तुम भी आत्मा हो, आत्मा के हाथ ही नहीं होते । अब चरण स्पर्श करो।

साधर्मी–आप ही बताओ।

पं. जी–'ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते' ज्ञान ज्ञान रूप हो जाये। ज्ञान, ज्ञान में प्रतिष्ठित हो जाए, यही चरण स्पर्श है।

69 अनाथालय

सागर जाते समय मार्ग में पं.जी साहब ने पूछा–

क्यों भाई ! सागर में कोई अनाथालय है ?

भाई जी–सागर में तो नहीं है।

–मैं तो कहता हूँ कि सारा सागर ही अनाथालय है।

सो कैसे ?

सागर में रहने वाले सब अनाथ हैं और अनाथ जहाँ रहते हैं वह स्थान अनाथालय है।

सब अनाथ कैसे हैं ? वीतरागी देव ही नाथों के नाथ हैं, जिन्हें उनकी श्रद्धा, भक्ति नहीं, वे सब अनाथ ही हैं।

जो चैतन्यनाथ को भी नहीं जानता और नाथों के नाथ को भी नहीं जानता वह अनाथ है और वह स्थान अनाथालय है।

अरे ! सागर ही क्या ? सारा संसार अनाथालय है क्योंकि जिसने चैतन्य नाथ को जान लिया, नाथों के नाथ को पहिचान लिया। अपने को चैतन्य रूप जान लिया, वह इस दु:खद संसार में रहता ही नहीं।

जब लगे कि मैं अनाथ हूँ, इस संसार में कोई मुझे शरण नहीं है, तब विचार करना कि सनाथ कौन ? और नाथों के नाथ वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के चरणों की शरण लेकर अपने चैतन्य नाथ का आश्रय लेना।

70 समय का सदुपयोग

एक दिन पूज्य पं. जी साहब से कुछ समाधान प्राप्ति हेतु उनके कमरे में गया। वे लघुशंका निवारणार्थ गये हुए थे, सो मैं वहीं खड़ा हो प्रतीक्षा करने लगा।

निवृत्त होकर आये तो बोले–कहो क्या हो रहा है ? मैंने कहा–कुछ पूछना है। बोले– इतनी देर खड़े रहे, इतनी देर में एक भजन ही पढ़ लेते।

मैं अभी आया हूँ, दो–तीन मिनिट ही हुए होंगे। तो दो तीन मिनिट की भी तो कीमत है, वे तो व्यर्थ गये। यदि एक–एक समय बचाओ तो कितना समय बचता है, अन्यथा सब यही कहते हैं कि मेरे पास समय नहीं है।

अरे भाई ! अपने पास पाँच मिनिट हैं तो एक भक्ति, स्तुति तो गुनगुना सकते हैं। दो मिनिट हैं तो एक दोहा, छोटी सी परिभाषा तो दोहरा सकते हैं।

भाई ! यह समय आराधना के लिए है और आराधना के लिए पुरुषार्थ चाहिए। विराधना तो अनादि संस्कार से हो ही रही है। समय को व्यर्थ मत जाने दो।

'समय का विराधक, समयसार का आराधक नहीं हो सकता।'

जिसे समय की ही कीमत नहीं, वह समयसार को कैसे जानेगा ?

कोई कहे कि एक समय में क्या होता है ? भाई ! एक समय का भी अपना महत्व है। एक समय में सम्यक्त्व कर ले या एक समय में मृत्यु आ जाये। इसलिए भाई ! समय को बर्बाद मत करो, समय का सदुपयोग करो।

71. पवित्र घर अपवित्र न हो

गौरझामर पहुँचने पर एक साधर्मी के मकान में ठहरना हुआ। दूसरे दिन भोजनोपरान्त उनकी लड़की बोली–पं.जी साहब आपके आगमन से एवं भोजन करने से यह घर पवित्र हो गया। पं. जी साहब उन भाई से बोले–बिटिया कह रही है कि घर पवित्र हो गया, तो अब इस घर को अपवित्र न होने देना।

अब इस घर में विषय–भोग नहीं होने चाहिए। इस घर को आश्रम में बदल देना। जिसमें धर्माराधक जीव अपनी आराधना/प्रभावना कर सकें और तुम भी समय निकालो, निवृत्ति लो। संयम से रहकर मंदिर की, धर्मात्माओं की सेवा करो, धर्मात्मा तैयार करो।

72. सत्समागम की आवश्यकता

गौरझामर से सागर वापस लौट रहे थे। गौरझामर का प्रवास बहुत अल्प रहा, लगभग तीन–चार दिन। वहाँ के साधर्मीजन की बहुत अभिलाषा थी कि पं. जी साहब कम से कम दस–पन्द्रह दिन तो रुकेंगे ही परन्तु...। गाड़ी में बैठे साधर्मीगण बोले–पं.जी साहब आपके आगमन से बहुत से नये लोग जुड़ जाते हैं, जो कभी मंदिर तक नहीं आते थे वे प्रवचन में नियमित एवं समय पर आकर बैठते थे।

थोड़े दिन और रुकना बनता तो बहुत अच्छा लगता। आप चल दिए सो सभी को बहुत आश्चर्य मिश्रित दुख है कि इतनी जल्दी क्यों? गृहस्थ हैं सो सभी तो लाभ लेने बाहर पहुँच नहीं पाते, यहीं समागम बनने पर समय निकालकर आने का अवश्य प्रयत्न करते हैं। समागम की जरूरत बहुत है।

पं.जी साहब बोले–भाई! मैं तो यही चाहता हूँ कि जिनशासन की उत्कृष्ट से उत्कृष्ट प्रभावना हो। मेरा रोम–रोम, श्वांस–श्वांस धर्म की प्रभावना में लगे और तत्क्षण पलकों के अन्दर से दो मोती झर पड़े परन्तु मेरे चाहने मात्र से ही तो सब कुछ नहीं होता। जो निश्चित है वही होगा। हमारे–तुम्हारे विकल्प अकिंचित्कर हैं।

73. व्यवस्था की समझ

उज्जैन से कुछ साधर्मीजन पं. जी साहब के पास आये हुए थे। सर्व प्रथम उन्होंने पूछा–आपका स्वास्थ्य कैसा है?

पं. जी कुछ देर शान्त रहने के पश्चात् बोले–जो है उसे ही ठीक समझो।

वस्तु को अपने अनुसार परिणमित करना उचित भी नहीं है और संभव भी नहीं है। अनिष्ट की कल्पना मत करो। जो है उसे ही ठीक समझो। अनिष्ट की कल्पना अज्ञान और राग–द्वेष से उत्पन्न होती है, उसे दूर करने का उपाय करो। समता रखो इसी में सुख है।

एक सज्जन–साहब! उज्जैन में एक गोष्ठी हो जाए तो बहुत लाभ मिले।

पं.जी–यह हमारी व्यवस्था नहीं है। हम तो हमेशा तैयार हैं। समाज को ही कभी समय है, कभी नहीं है।

सज्जन–हमने तो सुना है आप कहीं जाते नहीं, आपकी व्यवस्था भी बहुत कठिन है।

पं. जी–भाई! हम तो जहाँ कहो वहाँ चलने को तैयार हैं लेकिन आप बुला नहीं सकते क्योंकि व्यवस्थाओं को तो कठिन करते रहेंगे परन्तु समझेंगे नहीं।

वहाँ बढ़िया स्टेज तो मिल जाएगी परन्तु लकड़ी का सूखा तखत, चौकी नहीं मिलेगी। बिजली, डेकोरेशन, हेलोजन, मंचों पर प्रवचन करने/सुनने वाले तो बहुत मिलेंगे परन्तु बिना पंखा, बिना बिजली के अंधेरे में सुनने वाले नहीं मिलेंगे। जेट से, बोरिंग से जितना चाहे पानी मिलेगा परन्तु कुँए से जीवानी करके नहीं मिलेगा।

यदि यह सब हो तो चलो हम वहाँ भी चलने को तैयार हैं। हम यहाँ बंधे थोड़े ही हैं जो एक ही स्थान पर रहते हों। जिनशासन की प्रभावना के लिए विहार करेंगे परन्तु अपनी मर्यादा से।

दादा जी (विमलचंदजी झांझरी) कैसे हैं? उनसे कहना समाधिमय जीवन जियें, समाधिमरण की चिंता न करें।

सुकमाल से कहना निवृत्ति ली है, अपने कल्याण के लिए समय निकालो। इन प्रपंचों में समय मत गंवाओ, समय बहुत कीमती है। निवृत्ति को पूरा नहीं, सार्थक करना है। समय निकालो।

74. सुबह से क्या लिया ?

जब तक शरीर है तब तक रोग है। कोई न कोई रोग तो अपना अस्तित्व दिखलाता ही है।

मौ के एक साधर्मी को पैरालाइसिस हो गया। पैरों ने भी अपना कार्य बन्द कर दिया था। चलना-फिरना, उठना, बैठना, यहाँ तक कि हलन-चलन भी नहीं।

सोनागिर का कार्यक्रम था, मार्ग में ग्वालियर रुककर उन्हें देखने पहुँचे। लगभग 11 बजे प्रातः का समय था। उनके दोनों सुपुत्र एवं सेवक उनकी सेवा में हाजिर थे। पं.जी साहब को तखत पर बैठाया। पं. जी ने स्वास्थ्य की कुशलता के विषय में पूछा-सुबह से क्या लिया ?

9:30 के लगभग थोड़ी सी मूंग की दाल ले ली थी।

पं.जी-और ?

बस इतना ही।

पं. जी-अरे ! सुबह उठकर भगवान का नाम लिया या नहीं। कौन पूछ रहा है, यह भी तो विचार करो और तुम शरीर नहीं हो, आत्मा हो। ये जड़ भोजन हमारा भोजन नहीं। ज्ञानमय भोजन ही हमारा भोजन है। वस्तु स्वरूप का विचार, तत्त्वों का निर्णय करो।

शरीर का परिणमन तो ऐसे ही चलेगा। इसकी जो योग्यता है, उसमें हम कुछ भी नहीं कर सकते, उसके भी हम मात्र ज्ञाता-दृष्टा हैं।

अपने उपयोग को शरीर से मोड़ो, अपनी ओर जोड़ो।

75. चिंतन धारा

एक रात्रि हम सभी पूज्य श्री के समीप बैठे चर्चा कर रहे थे। रात्रि की कालिमा को भी प्रकाश देने वाले शब्दों के आगे निद्रा भी अप्रभावी हो जाती है, इसलिए सामने लगा समयचक्र (घड़ी) भी अपनी ओर ध्यान आकर्षित न कर सका।

पं. जी साहब बोले–आज लोगों की सोच बदल गयी है। हर कोई दूसरों के दोष देख–देखकर आलोचना करते हैं जबकि उसी बात में से कुछ अच्छाई भी निकाली जा सकती है। विचारधारा बदलनी चाहिए। यदि तत्त्व के विचार चलें तो समता के फुब्बारे फूटें। क्यों नहीं आयेगी समता, जरूर आयेगी।

'बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहिं।'

'समता आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहिं।'

एक लड़के ने आम के पेड़ पर पत्थर मारा। पत्थर कोतवाल की आँख के समीप लगा। कोतवाल ने लड़के को पकड़कर कहा–पत्थर क्यों मारा?

लड़का–मैंने तो आम गिराने के लिए मारा था।

कोतवाल सोचने लगा यदि यह पत्थर आम के पेड़ में लगता तो आम देता। मुझे लगा तो मैं क्या दूँ? डाटूँ या मारूँ। क्या मैं पेड़ से भी गया बीता हूँ? कोतवाल ने आम तोड़कर दे दिया।

ऐसा चिंतन चले। चिंतन धारा बदले तब समता का प्रवाह बहे, प्रेम की धारा बहे।

76. धूल

गर्मी का मौसम कभी तेज धूप, कभी आँधी, कभी बारिश। ऐसे ही एक दिन धूप की प्रचण्डता कम करने के लिए तेज आंधी ने अपना प्रभाव फैलाया, धूल ने अपना साम्राज्य जमाया। आंधी थमने के बाद मैंने एक भाई से कहा–धूल बहुत हो गई है, झाड़ू लगा लें? झाड़ू लेकर लगाने लगे तो पं.जी ने पूछा–कितनी धूल थी?

बहुत धूल थी

अच्छा इससे ज्यादा धूल कहाँ है?

उससे ज्यादा?

छत पर

उससे ज्यादा

नीचे आंगन में

उससे ज्यादा?

बाहर खेत में

उससे ज्यादा?

खेतों से ज्यादा धूल कहाँ होती है?

पं. जी–सबसे ज्यादा धूल तो मन में बसी है। मन की धूल साफ हो जाए तो सब ओर सफाई है, अन्यथा बाहर सफाई भी हो जाए तब भी विशेष लाभ नहीं।

आज ईर्ष्या, द्वेष कषायों की धूल इतनी पनप रही है कि उसके प्रभाव से गुण भी धूमिल हो जाए, इसलिए इस धूल का अंश भी दिखाई दे तो तुरंत साफ कर लेना।

"मिथ्यात्व बैरी का अंश भी बुरा है।"

77. सच्चा और अच्छा

अच्छाई को दृष्टि एवं आचरण से परिभाषित करने वाले पू. पं. जी साहब ने समीपवर्ती एक भाई से कहा– कोई अच्छी बात सुनाओ– प्रथम तो वह शान्त रहे फिर बोले–क्या सुनाऊँ ?

पं.जी–इतने दिन तुमने पढ़ा, सुना, फिर भी पूछते हो क्या सुनाऊँ ! इतने दिन में कोई अच्छी बात ही नहीं लगी।

फिर पं. जी कुछ मुस्कराये, बोले–जो सच्चा है, वही अच्छा है। बस इसे जान लो।

जगत में अच्छे–बुरे का भेद सदियों से चला आ रहा है, सदियों से क्या अनादि से ही चला आ रहा है। अच्छा क्या ? बुरा क्या ? वास्तव में जो हितकारी हो सो अच्छा, अहितकारी हो सो बुरा। अच्छे–बुरे से ही धर्म–अधर्म की, मित्र–शत्रु की, अपने–पराये की पहिचान होती है। जो अच्छा हो, जिसमें हित हो, वही ग्रहण करने योग्य है। जो बुरा हो, जिससे अहित हो वही छोड़ने योग्य है।

जो हित के मार्ग पर स्वयं लगे हैं, अन्य को प्रेरणा देते हैं, वे ही सच्चे संत हैं, शरणभूत हैं, ज्ञानी हैं, धर्मात्मा हैं, उपकारी हैं।

78. समझ का फेर

छोटी सी नासमझी सारा कार्य बिगाड़ देती है। यदि उसी कार्य को समझकर किया जाए तो सहज व सुंदर हो जाए।

पं. जी सा. भोजन करके उठे तो चौके में उपस्थित बाई से बोले–बाई ! रोटी थोड़ी मोटी थी, पतली बनाया करो और चले गये।

बाई ने अन्य बाई से कहा–पं.जी सा. कह रहे थे–रोटी पतली बनाया करो। वह बाई पहले से ही पतली रोटी बनाती थी। दूसरे दिन उसने और पतली रोटी बनाई। परोसी गई। भोजनोपरांत पुनः पं. जी ने कहा–बाई रोटी थोड़ी मोटी बनाया करो। बाई ने पूर्व वाली बाई से कहा–पं. जी साहब ने कहा है–रोटी मोटी बनाया करो। दूसरे दिन थाली में मोटी रोटी दिखाई दी। पं. जी ने दोनों बाई को रोका और बोले–बताओ गलती कहाँ हुई।

अरे भाई ! जिसकी रोटी पतली थी उसे मोटी करने को कहा था और जिसकी मोटी थी उसे पतली करने को कहा था। आप लोगों ने अपनी गलती न देखकर दूसरों को सिखाना शुरु कर दिया–यही गलती हो गई। अपना–अपना सुधार करते तो काम अच्छा हो जाता।

यदि अपने दोषों को देखें तो सब दोष दूर हो जाएं। दूसरों के ही दोष देखते रहें तो कभी दोष दूर नहीं हों। सच तो यह है कि परिणमन में दोष देखना ही गलती है।

79. देह देवालय

आदरणीय पं. जी साहब ने एक दिन एकाएक पूछा– अच्छा बताओ ? जहाँ देवता का वास हो उस स्थान को क्या कहते हैं।

मैंने कहा–देवालय।

बोले–यह देह भी देवालय है। वह कैसे ? देवता के निवास को देवालय कहते हैं। इस देह में भी शाश्वत शुद्ध परमात्मा का निवास है। परमात्मा का निवास होने से यह देह भी देवालय हुई।

देवालय भोग के नहीं, योग के स्थान हैं। देवालय का उपयोग भोगों में करना महा अपराध है। मंदिर में भोग भोगोगे तो महापाप होगा। यह देह देवालय है, यह भोगों के लिए नहीं है अपितु अब तक भोग में मस्त रहकर जो पापबंध किया है, उसके निष्क्रमण के लिए अपनी शक्ति को योग में लगाने के लिए है।

किसी ने हमें मंदिर के उपयोग हेतु धन प्रदान किया। हमने उसे अपने पंचेन्द्रिय भोगों की पूर्ति में लगा दिया, यह अपराध है। पुण्य के उदय में शरीर मिला, ये भोग मिले, भोगने की शक्ति मिली, यदि हम भोगने में लगाते हैं तो समस्त पुण्य खर्च हो जाएगा। पुण्य के उदय में प्राप्त सामग्री भोगों में, विषयों में लुटाने के लिए नहीं, आराधना और प्रभावना के लिए है।

यदि हम आराधना/ प्रभावना नहीं करते हैं, यह अपराध है। आराधना का फल प्रसन्नता है। प्रसन्न न रहना ही अपराध है। आपके जीवन में जो तनाव है, दुख है, वह सब पाप का ही फल है। यदि दुखी नहीं होना है तो पापों से निवृत्त हो।

80. अज्ञान को मिटाओ

भिण्ड प्रवास। 1 जनवरी 2004। दिन का समय। धूप में बैठकर मैं छहढाला का पाठ कर रहा था, आप श्री सुन रहे थे। 05 जनवरी-पोलियो रविवार। चौराहों पर लगे लाउडस्पीकरों से एक धुन निकल रही थी-प्रदेश को पोलियो मुक्त बनाना है, भारत को पोलियो से बचाना है। अच्छे लोगों का संसर्ग सभी करना चाहते हैं। यह धुन भी धीरे से आकर पं. जी के कानों को स्पर्श कर गई।

पं. जी–पोलियो से कैसे बचेंगे ?

मैंने कहा–पोलियो ड्राप की दो बूंदें बच्चों के मुँह में डाल देंगे, पोलियो नहीं होगा।

पं. जी–क्या इससे पोलियो से मुक्ति मिल जाएगी ? मैं भी शंकाशील हो उनकी ओर निहारने लगा। बोले–पोलियो से बचाना है तो पोलियो जिस पाप से हुआ उस पाप को मिटाओ। पाप जिस अज्ञान से होता है, उस अज्ञान को मिटाओ तब पोलियो मिटेगा। पोलियो से बचाना है, इतने विज्ञापन मात्र से पोलियो नहीं मिटेगा और न ही दवा की दो बूँदों से पोलियो मिटेगा।

सच तो यह है कि सच्ची दवा उनके पास है ही नहीं। औषधि सेवन से रोग दूर नहीं होता, औषधिदान से होता है। इसीप्रकार यदि गरीबी हटाना है तो गरीबी जिस पाप परिणाम का फल है उस परिणाम को मिटाना होगा।

81. गुरु पूर्णिमा

'गुरु पूर्णिमा' का पावन दिवस था। इस दिन पूर्णमासी के चन्द्र समान गुणों से सुशोभित श्रीगुरु अपने श्री गुरु से आशीष लेकर वर्षा ऋतु में होने वाली अति जीवोत्पत्ति की रक्षार्थ अहिंसा धर्म के पालनार्थ चातुर्मास की स्थापना करते हैं।

मैं भिण्ड में था,आ.पं.जी सा.मौ विराजमान थे। विचार किया– 'गुरु पूर्णिमा' है,पं.जी.सा.से आशीर्वाद लेने एवं आशीर्वचन सुनने समीप चलें।

अमायन से सोनू को साथ लेकर मौ पहुँचे। लगभग प्रातः 8:30 का समय होगा। पं. जी. साहब बैठे कुछ लिख एवं गुनगुना रहे थे। मैंने प्रणाम किया, उन्होंने हाथ से बैठने का इशारा किया।

कुछ समय बाद पेंसिल ने तो चलना बंद कर दिया किन्तु मन ने नहीं। चश्मे को नाक-कान से मुक्ति देकर चौकी पर स्थान दिया। स्वास्थ्यादि पूछा।

मैंने कहा-आज 'गुरु पूर्णिमा' है, सोचा आपको वंदना करने चलें। आपके पास से जाने से मन अच्छा नहीं रहता है।

पं. जी-हमें विचार आया-सब हमें वंदना करते हैं, हम भी तो पहले अपने गुरु को वंदना कर लें। पेन-कॉपी रखी थी, एक ''वंदनाष्टक'' लिख गया।

फिर आपने हमें वह वंदनाष्टक सुनाया। सुनकर अपार हर्ष हुआ, चरण स्पर्श किए।

ऐसा लगा कि पूर्णमासी के चन्द्र की चाँदनी ने स्पर्श कर लिया है, जिससे संतप्त मन शीतल एवं प्रफुल्लित हो गया और आप वात्सल्य का प्रसाद देकर पूजन के लिए चले गये।

82. ज्ञान-वैराग्य का लाभ

मैं और दीदी पू. पं. जी साहब के समीप पहुँचे। पूर्व से ही आपने अनार के दाने निकलवाकर रखे थे।

दीदी ने प्लेट मुझे देते हुए कहा-स्वास्थ्य लाभ हो।

पं. जी-क्या कहा ?

दीदी–त्रिचूर प्राकृतिक चिकित्सालय में कुछ देते हुए ऐसा बोलते हैं कि आपको स्वास्थ्य लाभ हो।

पं. जी–ऐसा कहो कि संयम का लाभ हो, वैराग्य की वृद्धि हो।

भोजन भी संयम के हेतु।

यह सब मात्र स्वास्थ्य के लिए नहीं है, संयम, वैराग्य की वृद्धि के लिए है, समाधि के लिए है। स्वास्थ्य थोड़ा उन्नीस बीस भी चल जायेगा परन्तु ज्ञान–वैराग्य शिथिल नहीं होना चाहिए।

मुझे और अनार दाने देने लगे।

मेरे मना करने पर बोले–अरे ! खा लो। अभी खाने की उम्र है। बहुत मेहनत करना है। इस शरीर से बहुत प्रभावना करनी है। इसे बर्बाद नहीं करना है।

दीदी–अब हम ऐसा ही कहा करेंगे।

'संयम और वैराग्य लाभ हो।'

83. संयम कैसे पले

पं. जी सा. से जब पूछा–आपने घरों पर भोजन करना क्यों बंद कर दिया ? बोले– मार्ग तो अनुद्दिष्ट आहार का ही है परन्तु क्या करें ? गृहस्थों के मायाचार और संयम के परिपालन के लिए करना पड़ा।

बोले–आ. बाबा जी (आत्मानंद जी) भोजन के लिए किसी गृहस्थ के घर गये। भोजन में कुछ देर थी; अतः बाबा जी को बरामदे में बिठा दिया।

बाबा जी ने अचानक पूछ दिया–कहो भाई ! छन्ना कहाँ है ?

जरा देखें तो ?

गृहस्थ भाई अन्दर गये एवं सकपकाते हुए आकर बोले– बाबा जी ! वो क्या है कि अभी छह महीने से ही नहीं है, पहले तो था।

बाबा जी चुपचाप उठे और वापस चले आये।

जिस घर में छह माह से छन्ना ही न हो, जैनों का चिन्ह ही न हो, वह कैसा जैन का घर ? ऐसे घरों में हमारा संयम कैसे पले ?

क्या ऐसे भी जैन होते हैं.... ?

84. नियम–संयम में दृढ़ता

'नहीं छोड़ा कर्मों ने तीर्थंकरों को।

नहीं छोड़ा तीर्थंकरों ने कर्मों को।।'

कर्म किसी को नहीं छोड़ते, चाहे वह बालक हो, युवा हो, निर्बल हो सबल हो, मूरख हो, प्रवीण हो। कर्म का उदय आता है और चला जाता है, जो समता से सहते हैं, वे कर्मों पर विजय प्राप्त कर लेते हैं, जिन पर कर्म विजयी हो जाता है, वे दुखी होते हैं।

पूज्य पं. जी साहब को भी बीमारी ने अपने आगोश में ले लिया था। लगभग 27 दिन के लंघन हुए। देखने वालों का न टूटने वाला क्रम चलता ही रहता। अनेक प्रकार के अनेक कर्मोपद्रवों से सामना हुआ परन्तु दृढ़ता के आगे सब बेअसर, वे दृश्य दर्शनीय एवं अनुकरणीय हो गये।

कैसी भी तीव्र प्रतिकूलता रही हो परन्तु अपने नियम, संयम में कोई शिथिलता नहीं आने दी।

शरीर भले क्षीण हो रहा हो परन्तु स्वाध्याय, पाठ, पूजन में कभी शिथिलता नहीं।

एक दिन मैं भूल गया और पूजन से पूर्व ही पूछ बैठा–काढ़ा ले लिया ? नाराज होते हुए बोले–क्या बदनाम कराओगे ?

क्या तुम पूजन से पहले भोजन कर सकते हो ? यदि बीमारी के कारण मैं भूल जाऊँ तो तुम तो.... ? मैंने कहा–ऐसा नहीं है, मुझे ज्ञात नहीं था कि आपने पूजन कर ली या नहीं ?

बोले–कदाचित् मैं भूल भी जाऊँ तब भी तुम्हारा कर्तव्य है मुझे याद दिलाना और अंतिम समय तक नियम–संयम में शिथिलता नहीं आने दी। यहाँ तक कि जीवन के अंतिम दिन भी बिस्तर त्याग कर जमीन पर बैठकर ही पानी, काढ़ा ग्रहण किया।

85. गुणग्राही बनो

एक विद्वान पं. जी सा. को देखने आये। उनकी आदत दूसरों के संबंध में हस्तक्षेप करने, दूसरों के दोषों को खोजने की थी, सो पं.जी सा. से कहने लगे।

पं. जी–भैया! समता ही धर्म है, भेदज्ञान ही उपाय है। दूसरों के दोषों को मत देखो। समता, भेदज्ञान करो। अपना समय कल्याण में लगाओ।

कोई बाबूभाई को देखने आता तो बाबूभाई यही कहते कि–भाई ! ऐसी दशा देखकर भी वैराग्य नहीं आता, वैराग्य लाओ।

दूसरों के दोषों को देखने से कोई गुणवान नहीं बनता। सभी में दोष होते हैं तो कोई गुण भी होते हैं। गुणग्राही बनो। दोषों को देखकर ऐसा दोष मेरे में न आए–ऐसा विचार कर दोष दूर करो।

86. पक्ष मत पकड़ो

दिल्ली से चार–पाँच साधर्मीजन पं. जी साहब को देखने पधारे। नवीन जिनमंदिर निर्माण की चर्चा चल निकली। बोले–अब कोई मंदिर में स्वाध्याय नहीं करने देता, घर पर ही स्वाध्याय करते हैं; अतः एक अलग से मंदिर बनाना चाहते हैं। अब तो हर जगह विरोध होने लगा है।

पं.जी सा.–दोषों की निंदा होती है, गुणों की प्रशंसा होती है। हम विरोध के कारण देते हैं तो विरोध होता है, हम विरोध के कारण देकर सोचें कि विरोध न हो ऐसा कैसे संभव है ?

कोई एक दीपक जलाकर आरती करे तो उसे हीन दृष्टि से देखते हैं, अपने से अलग समझते हैं, तिरस्कार करते हैं और हमारे आयोजनों में कितनी मरकरियाँ जलतीं हैं, भले कीड़े बिछ जायें, उन पर पैर रखकर सभी निकलें तब कहाँ गया हमारा यत्नाचार, हमारी अहिंसा ? फिर भी हम धर्म के ठेकेदार कहलवाना चाहते हैं।

भैया ! एक छोटा सा मंदिर बना लो। सादगी, संतोष से रहो। सादगी भी एक सौन्दर्य है। पक्ष मत पकड़ो, पक्ष का ही तो विरोध होता है।

धर्म अहिंसा रूप है। धर्म आत्मा का स्वभाव है। कभी व्याकुल नहीं होना चाहिए।

87. कर्तव्य

बाबूजी दिल्ली से पं. जी साहब को देखने के लिए आ रहे थे। प्रातः 4 बजे ग्वालियर स्टेशन पर उतरे। जल्दी अमायन पहुँचने के उद्देश्य से ग्वालियर न रुक कर, सीधे बस स्टेण्ड पहुँचे परन्तु बस लेट हो गई और 7:30 पर वहाँ से छूटी। रास्ते में किसी कारण से पुलिस ने रोक दी। वहाँ से जीप से चले। अमायन से 3–4 किलो मीटर दूरी पर जाम लगा था, अतः उतरना पड़ा। अमायन आने वाली सड़क गड्डों से बनी थी। जैसे–तैसे धीमे–धीमे अमायन पहुँचे।

पं. जी सा.–बहुत परेशानी उठानी पड़ी आपको।

बाबूजी– कोई बात नहीं। जो है उसे स्वीकार कर लिया।

पं.जी सा.–ठीक है। आकुल–व्याकुल होने से कौन सा हल निकलेगा? "व्याकुल का फल व्याकुलता है।"

पं. जी–कभी व्याकुल नहीं होना चाहिए। चाहे जैसी अनुकूल– प्रतिकूल परिस्थिति बने, घबराना नहीं कि ये क्या हुआ? अब क्या करें? 'बस उस जगह खड़े होकर विचार करना कि इस परिस्थिति में अब क्या करना चाहिए?'

जो हुआ सो हुआ,अब जो कर्तव्य है, उसे करना है, इसलिए चिंता नहीं होती।

88. अकेला माने आत्मा

भिण्ड गोष्ठी में उज्जैन से सुकमाल झांझरी आये, पं. जी साहब से मिलने पहुँचे।

कुशल–मंगल पूछते हुए पं. जी साहब बोले–

कहो कैसे हो ?

जी, ठीक हूँ।

अकेले आये हो ?

जी हाँ, अकेला आया हूँ।

बिल्कुल अकेले ?

जी हाँ।

कौन से अकेले ? अकेला तो आत्मा होता है, अकेला माने शरीर रहित।

अकेला माने आत्मा।

अपने को अकेला देखो। अकेला देखो माने अपने को आत्मा देखो, शरीर से रहित देखो।

संसार में जितना भी दुख है, अपने को आत्मा न मानने से है। अपने को आत्मा मान ले तो दुख दूर हो जाए।

और अकेला ही सुंदर होता है।

'एकत्व निश्चय गत समय, सर्वत्र सुंदर लोक में।'

सुकमाल जी ने पं. जी साहब के चरण स्पर्श किए और बोले– सही है, शरीर से ही सारा संसार लगा हुआ है यदि अपने को आत्मा मान ले तो संसार का ही अभाव हो जाए।

89. स्वतंत्रता का आशीर्वाद

23-24 वर्ष का एक भाई शिवपुरी से देखने आया।

पं. जी-अब क्या कर रहे हो ?

पं. जी वहाँ मन नहीं लगता, समागम है नहीं, स्वाध्याय करता हूँ तो समझ में नहीं आता।

पढ़ाई और काम क्या कर रहे हो ?

पटवारी का फार्म डाला है।

उसके लिए तो सिफारिस चाहिए। कोई है ?

कोई खास नहीं, बस आपका आशीर्वाद चाहिए।

भाई ! हम फंसने (नौकरी) का नहीं, स्वतंत्रता का आशीर्वाद देते हैं। नौकरी तो तुम्हारे पुण्य-पाप के उदय से मिले न मिले। हम तो कहेंगे स्वतंत्र रहो, निर्भार रहो।

थोड़ी देर शांत रहने के पश्चात्-तो पं. जी निवृत्ति का ही आशीर्वाद दे दो कि जल्दी से स्वतंत्र हो जाओ।

पं. जी मुस्करा कर बोले-बड़ा भोला लड़का है।

90. जीवन आयु के आधीन

डॉ. दीपक जी जयपुर जब देखने आये तो बीमारी ने 27 दिन की अवधि पूर्ण कर ली थी और उस दिन तो पानी भी नहीं पच रहा था। पानी पीते ही वमन हो जाती थी।

दीपक जी-अब आपको कैसा लग रहा है ? इतने दिन से कुछ खाया नहीं, कुछ इच्छा नहीं होती ?

इच्छा से क्या होता है, जब पानी ही नहीं पच रहा तो खायेंगे क्या ? और कुछ खाने में ही तो इतने दिन लग गये।

दीपक जी–कहीं ऐसा तो नहीं कि शरीर साथ छोड़ने की तैयारी में हो।

उसके लिए भी मैं तैयार हूँ। शरीर छूटे तो भी मुझे हर्ष है, उसके विकल्प में खेद, दुख नहीं, क्योंकि–

'समता से जो देह तजोगे तो उत्तम गति पावो।'

समाधिमरण करूँगा परन्तु अभी ऐसा दिखता नहीं है।

दीपक जी–आपकी दृढ़ता बहुत है।

इतने दिन बिना खाये रहे फिर भी अंतर में कोई कमजोरी नहीं दिखती। बोले–जीवन आयु के आधीन है, भोजन के आधीन नहीं। यह बीमारी मेरा कछ नहीं बिगाड़ पायेगी।

''मैं स्वयं पूर्ण हूँ अपने में, पर की मुझमें कुछ गंध नहीं।''

आपकी दृढ़ता अनुकरणीय है।

91. स्वाभिमान

'अहंकार से देना नहीं, दीनता से लेना नही।'

अमायन में इतना बड़ा काम हुआ परन्तु कभी चंदा के नाम पर एक पैसे की याचना नहीं की। स्वतः सहजता से जिसने जो दिया– स्वीकार है परन्तु नाम बढ़ाई के लिए कोई अवकाश नहीं।

भले ही समस्त कार्य पैसों से नहीं होते फिर भी पैसों के कार्य तो पैसों से ही होते हैं, उसके लिए धन की आवश्यकता भी है। इतनी

बड़ी संस्था, इतना बड़ा काम है तो धन भी आवश्यक है परन्तु स्वाभिमान छोड़कर याचना नहीं।

एक दिवस प्रवचनोपरांत आ. काला जी खड़े होकर अमायन की रूपरेखा समझाने लगे, भावुकता वश उन्होंने एक वाक्य कहा कि-सभी को अमायन की शरण में आना पड़ेगा। पं. जी साहब ने तुरन्त टोक दिया और अपने सारगर्भित वचनों के माध्यम से समझा दिया। सभा विसर्जन के बाद बोले-भैया! अपने काम का बड़प्पन और अपने लिए याचना, कभी मत करो। जिसका धन्य भाग्य होगा, उसका लगेगा। मान-बढ़ाई के लिए न लेना, न देना।

गलत कार्य का तुरन्त निषेध करना चाहिए तथा देने-लेने में अहंकार-दीनता नहीं आना चाहिए।

92. आराधक ही प्रभावक

आराधक ही प्रभावक होता है। स्वयं आराधना में लगकर जिनशासन की प्रभावना के लिए जिन्होंने अपना रोम-रोम समर्पण कर दिया ऐसे पू. पं. जी साहब का आत्महितकारी, कल्याणदायक प्रवचन सुनने के लिए दूर-दूर से लोगों का आवागमन लगा ही रहता था। सुनने को जीव जिज्ञासु बने रहते थे। इसी परिप्रेक्ष्य में गोष्ठियों का सफल आयोजन प्रारंभ हुआ। आपने जिनशासन की प्रभावना के लिए अपने शरीर और स्वास्थ्य को भी गौण कर दिया। स्वास्थ्य नाजुक होने पर भी प्रवचनों को गौण नहीं होने दिया। इतने समुदाय एवं इतने व्यस्त कार्यक्रम में भी सभी आगन्तुकों को समय देते, सभी

का ख्याल रखते। किसी को कुछ देना है, किसी से कुछ कहना है, कभी नहीं भूलते। हम लोग जब त्रुटि करते तो कहते कि–इतने लोग आते हैं, पता नहीं कौन–कहाँ से, कैसी परिस्थिति में आया हो और पुनः वह आ पावे या नहीं, दो शब्द उसके कान में पड़ जाये तो पता नहीं कब काम आ जावें; अतः ऐसा कोई काम मत करो, जिससे प्रवचनों में व्यवधान पड़े और प्रवचन न हो पायें। सदैव नये लोगों को जोड़ने का प्रोत्साहन, प्रेरणा करते ही रहते।

आपके वात्सल्य की महिमा वचनों में तो क्या? मन के भी अगोचर है, तब इस कलम में इतनी सामर्थ्य कहाँ?

धन्य है आपका जीवन। मुझे भी ऐसी शक्ति प्राप्त हो, आशीष दें कि आपके पथ का अनुगामी होऊँ।

93. निष्काम भाव से प्रभावना

एक सज्जन बोले–पं.जी साहब! हम अपना तन–मन–धन प्रभावना में लगाना चाहते हैं। आप बताइये हमें क्या करना है?

पं. जी साहब–तन–मन–धन को अपने से भिन्न समझो। बस ये करना है।

सज्जन–नहीं, नहीं! मेरा मतलब है कुछ धन बगैरह...।

पं.जी साहब–जब तक तन–मन–धन को अपने से भिन्न नहीं जानोगे तब तक निष्काम भाव से प्रभावना में नहीं लग सकते। कहीं न कहीं, कोई न कोई विकल्प खड़ा हो ही जायेगा, इसलिए पहले ये काम करो फिर तन–मन–धन तो स्वयमेव लग जायेगा।

ये सब तो माटी है, धूल के लिए अमूल्य को मत खोओ।

94. होली

एक विद्यार्थी से कहा–छुट्टियों में अमायन आना।

विद्यार्थी–जी हाँ, होली वहीं मनायेंगे।

पं. जी–होली या दीवाली?

विद्यार्थी–अभी छुट्टियों में होली फिर दीवाली।

पं. जी–अच्छा बताओ–होली माने क्या?

होली माने हो, ली। जो हो चुकी अब नहीं होना है। संसार के विषय–कषायों के काम हो चुके, अब नहीं होना चाहिए। ऐसा लगे उसका नाम होली है और होली को अंग्रेजी में क्या कहते हैं? Holiday –छुट्टी का दिन। Holi माने छुट्टी।

राग–द्वेष से, विषय कषायों से छुट्टी हो जाए, संसार से छुट्टी (मुक्ति) हो जाए, ऐसी होली मनाना।

विषयों की छुट्टी करना है, ऐसे संकल्प पूर्वक होली मनाना तब होली पर्व मनेगा।

और ये रंगों का पर्व कोई पर्व थोड़े ही है, ये तो शूद्रों का खेल है। बहुत से लोग सर्दियों में स्नान नहीं करते हैं, सर्दी कम होने पर उनके ऊपर जबरन पानी डाल देते हैं, सो होली हो गई।

परन्तु पं. जी साहब हम तो अपनी होली मनाने आयेंगे।

95. Tally

एक बहिन पहली बार अमायन गई थी। पं. जी साहब को वंदना करने पहुँची–आशीष रूप में धर्मोपदेश देने के उपरान्त पं. जी साहब ने पूछा–कम्प्यूटर आता है ?

थोड़ा आता है। Tally आती है।

पं. जी–Tally क्या ?

हिसाब–किताब करना... ।

पं. जी– हिसाब–किताब लगाना आता है ? लगा सकते हो ? कि किस परिणाम का क्या फल होगा ?

अरे ! तुम्हें क्या Tally आती है, Tally तो मुझे आती है। मैं लगा सकता हूँ हिसाब तो और बाहर के हिसाब में क्या है ? कुछ रु. देकर चाहे किसी से करा लो। दूसरों को भी रोजगार मिल जाएगा। अपना उपयोग समय तो अपने ज्ञानाभ्यास में, धर्म की प्रभावना कैसे हो ? हम कैसे सहयोग करें ? अपने परिणामों के विचार में–इस हिसाब–किताब में लगाओ। इसका नाम Tally है।

96. हमारी संस्कृति

मौ प्रवास का समय। शहर के कोलाहल से दूर गाँव का शान्त वातावरण। मन हुआ, टहलने के लिए गौधूलि बेला में निकल पड़े। राह में देखा–एक राहगीर ने दूसरे राहगीर को आवाज दी–राम–राम भैया ! राम–राम। कहो कहाँ जा रहे हो ?

बस थोड़ा काम था सो जाना था और वह आपकी गाय (वछिया) जो आपने मुझे देख-रेख के लिए दे रखी थी, बड़ी हो गई है, तन्दुरुस्त भी हो गई है। किसी दिन आओ।

हाँ-हाँ भैया। एक दिन उसे देखने तो आना है। प्रसंग देखकर पं. जी साहब बोले-देखो हमारे देश की संस्कृति! जहाँ मनुष्य को पशुओं के प्रति भी कितना अपनत्व है परन्तु आज तो मनुष्य का मनुष्य से नाता नहीं रहा। एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या, अहंकार, तिरस्कार, विद्वेष की भावनायें घर कर गईं हैं, मानवता तो मर गई है।

भैया! हमें इनसे कुछ सीखना चाहिए। अपनी संस्कृति को बनाए रखना जरुरी है, क्योंकि धर्म म्लेच्छों में नहीं होता।

97. मितव्ययी बनो, कंजूस नहीं

पं. जी साहब ने मुझे कुछ दिया। मैंने उस वस्तु को देखते हुए पूछा- ये किसकी मिगी है ? बोले-यह मिगी नहीं, साबुन का टुकड़ा है, छत पर डला था, सोचा कचड़े में चला जाएगा। यदि सर्फ में डाल देंगे तो काम में आ जाएगा।

मैंने कहा-इतना सा टुकड़ा... ?

अरे! इतना सा है तो क्या हुआ ? कचड़े में तो व्यर्थ ही चला जाएगा। यदि उसका सदुपयोग हो जावे तो उसकी कीमत बसूल हो जाएगी और इसके बनने में भी तो हिंसा हुई, यदि व्यर्थ फेंक दिया जाए तो अनर्थदण्ड की कोटि में जायेगा।

सुनो ! एक सेठ के घर में नई बहू आई थी, बड़े घर की बेटी थी। उसने देखा कि घी की एक बूंद गिर पड़ी थी जिसे सेठजी ने अंगुली से पोंछकर हाथों में मल लिया। बहू ने सोचा–सेठ जी इतने कंजूस हैं, यहाँ मेरी कैसे बनेगी ? बस उसके सिर में दर्द होने लगा। दो दिन हो गये। सेठ जी को खबर मिली तो पूछा कि–पहले भी कभी ऐसा दर्द हुआ है ?

जी हाँ !

वह कैसे ठीक हुआ ?

मोती पीसकर उसके लड्डू बनाकर खाने से ठीक होता था। सेठ जी तुरन्त तिजोरी में से मोती निकालकर पीसने बैठ गये। बहू ने रोक दिया। पिताजी ! दर्द बन्द हो गया।

कैसे ?

बहू ने पूरी स्थिति बताई !

सेठ जी बोले–बेटी ! घी की बूंद गिर पड़ी थी, उसमें चीटियाँ लगती, पैर पड़ते, कितनी हिंसा होती, इसलिए पोंछ लिया। यहाँ मोतियों की आवश्यकता है तो मोती हैं। कंजूसी की बात नहीं है, सदुपयोग की बात है।

तब मुझे भी एहसास हुआ कि आ. पं. जी साहब की दृष्टि कहाँ रहती है। बात इतने से टुकड़े की नहीं, बात हिंसा, प्रमाद और सदुपयोग की है। पदार्थ का सदुपयोग हो, दुरुपयोग नहीं।

'मितव्ययी बनो, कंजूस नहीं।'

98. भक्ति हो तो भगवान मिलते हैं।

चक्रवर्ती भरत द्वारापेक्षण के लिए खड़े हैं। इतनी भक्ति उमड़ी की आँखों से अश्रु छलक पड़े। जब आँखे खोली तो आकाश से मुनीश्वर आते दिखाई दिए।

चंदना सती! शरीर बंधन में पड़ा था, धन-वैभव पास नहीं था परन्तु भक्ति हृदय में बसी थी। भगवान चलकर द्वारे आ गये।

सच है भक्ति में बहुत शक्ति है, बहुत पवित्रता है।

एक भाई लगभग पाँच माह बाद वापस आने पर उन्होंने बताया कि पं. जी साहब! इष्ट का वियोग असह्य हो जाता है, उसमें भी आप जैसे हितकारी, वात्सल्यमयी, मोक्षमार्ग प्रदाता व्यक्तित्व का वियोग कैसे सहन हो सकता था- ऐसा सोचकर मैं जाते समय गुप्त रूप से आपके कमरे की झाड़ू लगाकर, आपके चरणों से स्पर्शित रज को कागज में बांधकर अपने साथ ले गया था और आज तक उसे सहेजकर रखा। प्रतिदिन उसका स्पर्श कर लेने से ऐसा आभास होता मानों आपके चरण स्पर्श का सौभाग्य मिल गया हो।

आपसे दूरी होने पर भी दूरी न रहे, ऐसी भावना से मैंने यह किया था। गलती के लिए क्षमा करें।

पं. जी बोले-भाई! तुम्हारी भक्ति और विनय तुम्हारे लिए हितकारी है फिर भी ऐसा कोई कार्य मत करो जो अप्रभावना में निमित्त बने, जिसमें मर्यादा का उल्लंघन हो, कहते-कहते उन्होंने सुनील भाई के सिर पर हाथ फेरा बोले-रामचन्द्र जी को ज्ञात था कि सीता निर्दोष है परन्तु मर्यादा की रक्षा के लिए सीता का परित्याग कर दिया।

धन्य हैं आप ! जो आपके हृदय में जिनशासन की ऐसी भक्ति बसी है। जिनशासन के नभ मण्डल में आपका यश सर्वत्र प्रकाशित हो। आपकी आराधना निरंतर वृद्धिंगत बनी रहे।

99. प्रेम का दीपक

गोरमी से वापस आ रहे थे। पं. जी साहब मौन थे। अन्य साधर्मी भाई आपस में चर्चा कर रहे थे। बीच में 'दीपक' की चर्चा छिड़ गई। दीपक जलाने से कितनी हिंसा होती है ? हम तो नहीं जलाते, जलाने वालों से भी दूर रहते हैं, आदि-आदि।

जब पं. जी साहब का मौन खुला तो बोले-आप लोग 'दीपक' का निषेध तो करते हो परन्तु हिंसा का निषेध कहाँ करते हो। अरे भाई ! कोई मंदकषायी है तो उसे प्रेम से समझा दो कि भैया! दीपक जलाकर छोड़ने से उसमें बहुत जीव गिरकर मर जाते हैं। दूसरे भगवान के सामने अशुद्ध घी जलाते हैं ? यदि जलाना है तो कुएँ के पानी का अष्टपहर का शुद्ध घी जलाओ।

यदि वह कहे-शुद्ध घी मिलता कहाँ है ?

तो कौन सी जरुरत है जलाने की ? जलाने से हो भी क्या रहा है। पुराने जमाने में बिजली के साधन नहीं थे तब जला लेते थे। यदि फिर भी न माने तो जबरदस्ती मत करो। आपस में मैत्री-प्रेम बना रहे। हम एक-दूसरे को अपना समझते रहें।

प्रेम का दीपक जलता रहे तो इस मिट्टी के दीपक को गौण कर दो।

वैसे भी जो दीपक नहीं जलाते वे मरकरी आदि जलाते हैं। हिंसा तो बराबर ही रही। हिंसा से डरो। हिंसा में प्रमाद परिणति मूल है।

दीपक का निषेध नहीं है, हिंसा का बचाव है।

प्रेम का दीपक जलाते रहो। इसकी ज्योति से कितने दिलों के दीप जलेंगे वह बड़ा काम है। दीप से दीप जलें। सभी में वात्सल्य की वृद्धि हो।

100. वात्सल्य में भेद नहीं

एक छोटा बालक, उम्र लगभग 13 वर्ष को चोट लग गई थी। वह अमायन में था और हम लोग मौ। फोन पर उससे बात की। मैंने पूछा–कैसे हो ? कहाँ लग गई ? तो बताया–गड्डे में गिर गया था,पैर में चोट आई है। डॉ. साहब ने टांके लगा दिये हैं। उसे सांत्वना दी, समझाया।

पं. जी साहब भी समीप बैठे सुन रहे थे। बोले–कोई बात नहीं, ठीक हो जाएगी। तुम्हारे नहीं लगी है, शरीर को लगी है।

बालक बोला–बाबा जी ! मैं रोया नहीं था और आप कैसे हैं ?

पं. जी ने उसको संबोधन किया–बस यही विचारना–हमारे नहीं लगी है। पाठ, भक्ति में मन लगाना, स्वाध्याय करना। ज्यादा चलना नहीं।

दूसरे दिन एक भाई अमायन जा रहे थे तो पं. जी मुझसे बोले–बालक के लिए कुछ पहुँचा दो। फिर उन्होंने किशमिश का एक पैकेट दिया। मैंने पैकेट उन भाई को देते हुए कहा–बालक से कहना बाबाजी ने तुम्हारे लिए भेजा है।

मैंने विचार किया कि–देखो ! वात्सल्य में छोटे–बड़े का भेद नहीं होता। ज्ञानी का हृदय शरीर को नहीं देखता, उन्हें तो सामने धर्मात्मा दिखाई देता है।

उन भाई के जाने के बाद मैंने पं. जी सा. से कहा–यही तो हमें सीखना है। (मन गद्‌गद् हो उठा था)

101. कैसा शोक ?

गाँव के एक साधर्मी कुछ वर्षों से गाँव छोड़कर शहर में रहने लगे थे, किसी बीमारी के कारण देह–विलय को प्राप्त हो गये।

पं. जी को समाचार प्राप्त हुआ। बोले–गुरुजनों (बुजुर्गों) की अवज्ञा और जिद इनकी मौत के बाह्य निमित्त बने।

गाँव छोड़ने से पहले सभी ने बहुत समझाया था कि यहीं रहकर काम करो। संतोष से रहो, ज्यादा कमाने के चक्कर में नहीं पड़ो परन्तु उन्होंने किसी की नहीं मानी और आज सब कुछ समाप्त हो गया। न पैसा ही कमा पाये, न कुछ इज्जत ही रही और जीवन भी समाप्त हो गया। अपने आगे किसी की नहीं चलने दी, इसी का परिणाम आज सामने है।

कभी भी ज्यादा कमाने के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। संतोष से रहो। उदय से ज्यादा किसी को कभी भी नहीं मिलता।

जब उनका शव आया तो सभी लोग रो रहे थे। उनका 12–13 वर्ष का लड़का बोला– आप लोग क्यों रो रहे हो ?

रोना बंद करो, सब लोग णमोकार मंत्र का पाठ करो। पंच परमेष्ठी ही सबको शरण हैं। आप लोग इतने प्रवचन सुनते हो फिर भी रो रहे हो ? अब हम भगवान की पूजा करेंगे, मम्मी को परेशान नहीं होने देंगे। कोई भी रोयेगा नहीं, सभी लोग णमोकार मंत्र का पाठ करो।

इतनी छोटी उम्र में इतना साहस प्रशंसनीय है। ऐसे प्रसंगों पर बड़े-बड़े भी शोक ग्रस्त हो जाते हैं। यह सब संस्कारों का ही फल है, इसलिए बच्चों को संस्कार अवश्य देना चाहिए।

102. प्रसन्नता

'कर्तव्य पालन बिना प्रसन्नता नहीं आती।'

गर्मी में-दोपहर का समय था। पं. जी साहब बोले-कुछ खा लिया। मैंने कहा-रखा है परन्तु खाने का मन नहीं है।

मैंने कहा-पं.जी कोई प्रसन्न नहीं दिखाई देता। बड़े-बड़े त्यागी हों, सबको देख लिया ऊपर से नीचे तक परन्तु प्रसन्नता किसी के चेहरे पर नहीं दिखाई देती। ये क्या जीवन है ?

पं. जी साहब बोले-प्रसन्नता आये कैसे ? कर्तव्य पालन बिना प्रसन्नता नहीं आती। कर्तव्य पालन कोई करना नहीं चाहता, सब अधिकार चाहते हैं। अब प्रसन्नता कैसे आये ?

चार लोग मिल बैठकर चर्चा करो, स्वाध्याय करो, निर्णय करो, वात्सल्य बाँटना सीखो। देखो प्रसन्नता आती है या नहीं। मंदिर की संभाल करो और थक जाओ। देखो थकान में भी प्रसन्नता

दिखेगी। अब दिनभर डले रहो, रुढ़ि से पढ़ लिया, चिंता करते रहो, भयभीत रहो तो प्रसन्नता नहीं आ सकती। अब तुमने भी कुछ नहीं खाया, किसी को खिलाया भी नहीं। जाओ सब मिलकर कुछ खा लो।

फिर स्वयं अपने चौके में गये। मूंगफली, चने सिकवाये। स्वयं अपने हाथों से हम सब लोगों को दिए और बोले–बताओ प्रसन्नता है या नहीं। भले ही कुछ देर की सही! सभी लोग हंस पड़े।

103. सब शुद्धात्मा हैं

अक्टूबर 2009, समय था सोनागिर जी गोष्ठी महोत्सव का। लगभग 700–800 साधर्मी स्वाध्याय का लाभ लेने हेतु पधारे थे।

प्रवचन में वस्तु स्वरूप के, तत्त्वों के परिचय से परिचित होते थे और अपना परिचय देने के लिए सभी समय पाकर कमरे पर पहुँचने को उत्सुक रहते। इसी श्रृंखला में देश की राजधानी दिल्ली प्रदेश के कुछ साधर्मी पधारे।

पं. जी साहब–आइए, बैठिए। कहिए?

बस आपसे मिलने चले आये।

कहाँ से...... ?

जी! हम लोग दिल्ली से आये हैं। हमारा नाम... है। मेरा .... व्यापार है। ये मेरे भाई..... हैं।

पं. जी साहब–भाई ये सब तो शरीर का परिचय है। हम सब तो शुद्धात्मा हैं, व्यवहार से भी कहें तो आत्मार्थी हैं, मोक्षार्थी हैं। बाकी

सब तो ठीक है। शरीर के परिचय को अपना परिचय मत मान लेना।

एक भाई–मैंने भिण्ड में पहली बार आपके वचनामृत सुने थे तभी मुझे आपकी बात अन्दर तक छू गई थी। बस तभी से मुझे स्वाध्याय की रुचि जाग गई है।

पं. जी साहब–क्यों नहीं छुएगी ? आखिर आपकी बात है।

भाई–सही है। बात तो हमारी अपनी ही है लेकिन आपकी शैली ही ऐसी है कि अन्दर तक भेद जाती है।

पं.जी–भाई ! अपनी बात है इसलिए रुचिकर लगती है। **आत्मार्थी को आत्मा की बात रुचती ही रुचती है।**

104. सरसता एवं ताड़ना

नैरोबी (द.अफ्रीका) से एक साधर्मी परिवार का आगमन हुआ। भाई जी ने चरण स्पर्श किए और हाथ जोड़कर बोले–आज आपको देखकर स्वामी जी की याद आ गई। लगभग 25 वर्ष पहले नैरोबी में स्वामी जी पधारे थे। कोई 27 दिन रुके होंगे। आज आपका प्रवचन सुनकर वही 25 वर्ष पहले का दृश्य आँखों के सामने घूम गया।

पं. जी साहब–स्वामी जी का प्रभावना योग बहुत था।

भाई–(हाथ जोड़कर) नैरोबी पधारकर हमें भी कुछ संबोधन दीजिए।

पं. जी साहब–भाई ! सभी के लिए एक ही संबोधन है। भो आत्मन् ! तुम शुद्धात्मा हो। अपने को शुद्धात्मा देखो। बाकी सब तो माँ

(जिनवाणी) की सरसता एवं ताड़ना है। भगवान आत्मा कहकर भगवान जैसा स्वरूप दिखाती है और नहीं मानने पर तू दुष्ट है, पापी है, रागी है, क्रोधी है, ठीठ है, यह सब माँ की ताड़ना है। जब मानता नहीं है तो इसप्रकार समझाती है। माँ का प्रयोजन तो एक मात्र सुधारने का है। भाषा कैसी भी हो।

अहो! आपकी वाणी सुनकर ऐसा लगता है मानो दिव्यध्वनि खिर रही हो।

105 सबकी भावना होती है

सोनागिर गोष्ठी का प्रसंग। लगभग 700 से 800 साधर्मी। सभी को पं. जी साहब से मिलना था। अपने-अपने समय की अनुकूलता से मिलने वाले आते-जाते। प्रातः से रात्रि तक यह क्रम चलता ही रहता। कभी-कभी अधिक थकान हो जाती फिर भी किससे मना किया जाए? एक दिन मैंने कहा-कुछ देर के लिए दरवाजे बंद कर दें, थोड़ी देर विश्राम कर लीजिए अन्यथा आवागमन का क्रम तो टूटता नहीं दिखता।

बोले-खुले रहने दो। आ जाने दो, पता नहीं कौन कितनी दूर से, कैसी भावना से, किन परिस्थितियों में आता है।

अपनी थकान से उनकी भावना ऊँची है।

यदि कोई विकथा करता है तो उससे सहजता से कह दो-भाई! अब समय हो गया। अथवा अपने कार्य में (स्वाध्याय,

सामायिक, चिंतन आदि में) लग जाओ। वह स्वयं ही चला जायेगा। कोई जबरन अपने को थोड़े ही थका सकता है। सबकी भावनाओं को देखना चाहिए। तभी नवागन्तुक का प्रवेश हो गया....। मैं देखता और सोचता ही रह गया कि साधर्मी की भावना थकान से कहीं ऊपर है।

106. तीर्थ यात्रा

शाश्वत सिद्धक्षेत्र श्री सम्मेदशिखर जी आदि तीर्थों की वंदना करके तीर्थयात्री वापस लौट आये। उस समय प्रवचन हो रहे थे, सभी ने प्रवचन सुने। प्रवचनोपरांत–

पं. जी साहब–तीर्थयात्रा कर आये।

जी हाँ! यात्रा पूरी हो गई। तीर्थयात्रा घर से प्रारंभ हुई थी, घर आकर ही पूरी हुई। बीच में न प्रारंभ, न अंत। इसीप्रकार मोक्षमार्ग की यात्रा निजघर को पहिचानने से प्रारंभ होती है, उसमें मग्नता होने पर पूरी होती है।

बताओ सबसे निकट का तीर्थक्षेत्र कौन सा है ?

निश्चय से शुद्धात्मा सबसे निकट का तीर्थक्षेत्र है और व्यवहार से जिनमंदिर। प्रतिदिन जिनमंदिर में पूजा, स्वाध्याय करते रहो, यही तीर्थ यात्रा है। तीर्थ क्षेत्रों पर तो कब जाना हो पाता है परन्तु अपने गाँव का मंदिर तो सदैव समीप ही है। यहाँ रोज पूजन, स्वाध्याय करो।

हमारे लिए यात्रा से क्या लेकर आये ? जो हमारे लिए लाये हो वह हमें दे दो। क्या लाये ?

साधर्मी–फल, कपड़े.....

अरे ! ये हमारे लिए नहीं हैं। हम शरीर नहीं हैं, जो अपने लिए लाये, वही हमारे लिए है।

जिन भावों से शासन की, धर्म की अप्रभावना हो उनका त्याग करना और जिन भावों से धर्म की प्रभावना हो, उनको ग्रहण पूर्वक आराधना करना ही तीर्थयात्रा का फल है।

107. जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन

आ. पं. जी साहब का एक गाँव में जाना हुआ। भोजन के लिए समाज के व्यक्ति लेने आते। लगभग पन्द्रह दिन में एक घर का पुनः क्रम आता था। भोजन करके आये तो वमन हो गई। हो सकता है भोजन में कुछ स्वास्थ्य के प्रतिकूल आ गया हो। पन्द्रह दिन बाद पुनः उन्हीं सज्जन के घर भोजन हुआ। फिर से वमन.. ? तीन–चार बार भोजन हुआ, हर बार वमन हो जाए। वे सज्जन डरते हुए आये और हाथ जोड़कर अपराध स्वीकारते हुए बोले–क्षमा हो महाराज ! मेरे व्यापार में चर्बी की मिलावट होती है। कहीं ऐसा तो नहीं उसी कारण से आपको... !

पं. जी–अरे भाई ! उत्तम स्थान के लिए वस्तु भी उत्तम ही चाहिए। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धि भी आवश्यक है।

108 सफलता का उपाय

पू. पं. जी सा. ने किसी भाई के संबंध में मुझसे पूछा–उनका क्या हाल है ?

मैंने कहा–ठीक ही है, मेहनत तो बहुत करते हैं परन्तु कोई खास सफलता दिखाई नहीं देती।

पं. जी साहब बोले–लौकिक में भी सफलता मात्र बाह्य साधनों से नहीं मिलती, अंतरंग साधन भी चाहिए।

अंतरंग साधन में मूल है विवेक और उसके सहयोगी हैं–धैर्य, क्षमा, विनय, सरलता, संतोष, सत्य...... आदि।

सफलता मिलती है पुण्य से और पुण्य होता है भगवान जिनेन्द्र देव के चरणों की भक्ति से।

उसमें से करना कुछ है नहीं, सो पुण्य कहाँ से होगा ?

पुण्य, विवेक बिना सफलता कहाँ से मिले ?

109. कौन छोटा–कौन बड़ा ?

रक्षाबंधन पर्व का दिवस। अमायन गया, प्रवचन सुने, भोजन किया तदुपरांत पं. जी साहब ने गाड़ी में बैठाया, बोले–चलो बरासों क्षेत्र के दर्शन कर आते हैं।

दर्शन किए, पं. जी साहब ने भक्ति की तभी भिण्ड कलेक्टर आ पहुँचे। उन्होंने भगवान के दर्शन किए। पं.जी सा.के चरण स्पर्श किए और जमीन पर ही सपरिवार बैठकर भक्ति का रसपान करने लगे पश्चात् कुछ देर चर्चा हुई। पं. जी सा. को मैंने मौसम्बी का रस

दिया, उसमें से उन्होंने थोड़ा सा रस कलेक्टर सा. को भी दिया।

कलेक्टर साहब बोले–भाई ! ये तो प्रसाद है, अवश्य लेना चाहिए। माथे से लगाकर पी लिया।

तभी क्षेत्र की जनता एवं ट्रस्टीगण भी आ गए, उन सभी ने कलेक्टर सा. के पैर छुए एवं कुछ समय लिया।

मैंने पूछा–पं. जी ! जनता कलेक्टर के पैर छू रही है और कलेक्टर आपके पैर छू रहे, तो बड़ा कौन ?

पं. जी साहब बोले–कौन छोटा, कौन बड़ा ? सभी जीव हैं, मनुष्य हैं। जनता कलेक्टर के पैर छूती है, कलेक्टर हमारे पैर छूते हैं, हम भगवान के पैर छूते हैं। कौन छोटा–कौन बड़ा ? न पैर छूने वाला छोटा–न पैर छुलवाने वाला बड़ा। भाई ! **कंजूस से कोई छोटा नहीं और त्यागी से बड़ा नहीं।**

चाहे कलेक्टर हो, प्रधानमंत्री हो, राष्ट्रपति हो, त्यागी के आगे सब झुकते हैं।

वीतरागी सबसे बड़े त्यागी हैं।

त्याग बिना तिरवो नहीं। जितना ज्यादा परिग्रह, उतना ज्यादा दुःख।

आज रक्षा बंधन है। रक्षा और बंधन कोई विपरीत नहीं हैं।

असंयम के विकल्पों से रक्षा के लिए प्रतिज्ञा का बंधन चाहिए।

सामान की रक्षा के लिए उसे कसकर बांधते हैं।

मिथ्यात्व बंधन–सम्यक्त्व रक्षा

कषाय बंधन–पुरुषार्थ उपाय

अज्ञान बंधन–ज्ञान रक्षा

110. गाड़ी जब फंस गई

भिण्ड से अमायन जाना था, हम और सोनू साथ थे, शाम का सफर, देर हो रही थी। अम्मा ने कहा–भोजन तैयार है, खाकर जाओ। हमने कहा–देर हो जाएगी, वहीं जाकर खा लेंगे। अम्मा ने बहुत कहा–कहीं देर न हो जाए, थोड़ा खा लो परन्तु हमने न मानी और चल दिए। बरासों होते हुए कच्चा मार्ग था, बारिश का मौसम, एक दिन पूर्व अथवा सुबह हुई बारिश से मिट्टी फूल चुकी थी। वह मोटर साइकिल के पहियों में फंसने लगी। वाइक बार–बार स्लिप (फिसलना) होने लगी। धीरे–धीरे आगे बढ़ते रहे। अब वाइक चलाना मुश्किल होने लगा, फिर रुक जाये। हैरान–परेशान धीरे–धीरे ऐसी स्थिति हुई कि वाईक न आगे जाये, न पीछे, पैदल लेकर चलें तो पैर भी फिसलें। इधर अंधेरा हो गया, न खाना, न पीना। अमायन खबर की,पं. जी साहब ने वहाँ से दो भाई भेजे तब सब ने मिलकर गाड़ी निकाली। अमायन पहुँचे, सब इन्तजार कर रहे थे।

पं. जी बोले–बुजुर्गों का दिल दुखाया, रोटी ठुकराकर आये सो रोटी से वंचित रहना पड़ा, इसलिए कभी बुजुर्गों की बात अनसुनी नहीं करना। सही–गलत का विचार करके अवधारण करना।

111. भक्ति की शक्ति

दिसम्बर 2021, आरौन पंचकल्याणक श्री पद्मप्रभ एवं श्री वासुपूज्य भगवान प्रतिमा की प्राण प्रतिष्ठा के पश्चात् भगवान को घर (अमायन) लाने का मंगल दिवस आ गया। भाई सोनू भगवान को लेकर गाँव पधारे। सकल समाज ढोल–नगाड़ों के साथ भगवान की अगवानी के लिए गाँव के बाहर पहुँचे। भगवान को सिर पर धारण किए दोनों भाई मंदिर के प्रवेश द्वार पर आ पहुँचे। मैं पं. जी साहब को सूचना देने कमरे पर पहुँचा। आप कुछ लिखने में तल्लीन थे। मैंने कुछ समय इंतजार किया पश्चात् साथ में अगवानी के लिए आये।

भगवान को देखते ही हर्ष से आँखें अपनी मर्यादा का उल्लंघन कर बैठीं। शब्द अवरुद्ध हो गये परन्तु मुख मुद्रा सब कुछ कह रही थी मानो बहुत समय से बिछुड़े किसी प्रिय स्वजन का आज पुनः मिलन हुआ हो। भगवान पाण्डुक शिला पर विराजमान हुए। कागज पर लिखे हृदय के उद्‌गार गले तक पहुँचे और वचनों द्वारा भक्ति में परिणमित हो गए। हृदय से लेकर वायुमण्डल तक सर्वत्र हर्ष ही हर्ष था। भक्ति की शक्ति रोगों को गतिरोध कर देती है।

112. उदारता

छात्रवृत्ति की चर्चा चल रही थी तो मैंने कहा कि पं. जी अपने ट्रस्ट में भी कुछ राशि जमा हो जाये तो अपन भी ट्रस्ट से कुछ जरुरतमंद, प्रतिभाशाली भाइयों को कुछ छात्रवृत्ति दे सकें।

आप तत्काल बोले–भंडार खुला है, कमी ही नहीं है। आप तो आज और अभी ही जो जरुरतमंद हैं, खुलकर सहायता कीजिये। फालतू की बर्बादी के लिए एक पैसा भी नहीं पर आवश्यकता वालों को कभी कमी नहीं।

साथ में यह नहीं भूलना–पैसों के साथ नेक सलाह भी बड़ा सहयोग है। सन्मार्ग दर्शक बड़ा सहयोगी है, उसके दुर्गुण दूर कर सद्भावों से भर दें।

113. आत्म प्रंशसा

जगत की वाह–वाह और ख्याति से दूर एकांत वास ही जिन्हें प्रिय है ऐसे वीतराग मार्ग के प्रणेता आ. पं. जी साहब के पास ब्र. सुमति जी मिले, चर्चा होती रही। उन्होंने स्वामी जी के कई संस्मरण लिखे, पं. जी साहब को सुनाये और बोले–आप भी अपने कुछ संस्मरण बतायें।

गम्भीर व्यक्तित्व के धनी आ. पं. जी किंचित् मुस्कराये और बोले कि–अपने संस्मरण हम ही अपने मुँह से बतायें ? ये तो निकट में

रहकर जीवन को देखो, इसमें आत्म प्रशंसा का दोष नहीं लगेगा। हृदय गद्-गद् हो गया। विचार आया कि जिनको जीवन के प्रति इतनी सावधानी हो, वे बाह्य प्रशंसा के कार्यों से तो कितने उदासीन होंगे।

114. जन्म लेना और जन्म देना कलंक है

सही दवा तो यही मानी जाती है जो बीमारी का अभाव कर स्वास्थ्य लाभ प्रदान करे, वैसे ही सही उपदेश तो वही माना जायेगा जो जीवन परिवर्तित कर दे।

आ.पं. जी साहब का प्रवचन चल रहा था, उसमें आत्महित के इच्छुक भाई-बहिन बड़ी ही विनय, भक्ति और प्रीति से सुन रहे थे। प्रवचन में एक बात आई-**'जन्म लेना और जन्म देना कलंक है।'**

बस इतनी सी बात ने विदुषी बहिन का जीवन परिवर्तित कर दिया, सारा जीवन बदल गया। इतनी सी बात ने हृदय को अंतर से मथ डाला और जन्म-मरण का अभाव करने वाले पथ पर जिनेन्द्र भगवान के मार्ग की ओर कदम बढ़ा दिये।

जिससे संसार की संतति चलती है उस गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने से इंकार कर दिया और ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर जन्म-मरण का अभाव करने के लिये उद्यमवंत हैं।

115. हिंसा का भय

साधारण वेशभूषा, जो एक किसान की होती है, सौम्य चेहरा, प्रसन्नता और तेज जिस पर व्याप्त हो। बाहर से सामान्य दिखने वाला यह व्यक्तित्व अंतर से कितना महान है, जिसकी थाह पाना भी कठिन है। कदम–कदम पर जिनके अंतर से सद्‌मार्ग की प्रेरणा स्फुटित होती रहती है, इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि सदैव कितने सावधान, सचेत और जागृत अवस्था में रहते हैं, ऐसे जिनमार्ग के प्रभावक नेता आ. ब्र. रवीन्द्र जी। आप मौ विराजमान थे, अमायन आने का कार्यक्रम बना तो आपको छोड़ने के लिये अलग से गाड़ी आ रही थी। एकाएक गाड़ी बस स्टेण्ड तक ही आ पाई थी कि आपने हाथ से रोकने का इशारा कर दिया और गाड़ी से उतर पड़े। गाड़ी से छोड़ने जो भाई आ रहे थे, भौंचक्के रह गये कि न जाने क्या कारण बना ?

आप सहज भाव से बोले–अमायन के लिये बस तैयार खड़ी है, अलग से हिंसा क्यों की जाये ?

काफी निवेदन के बाद भी निजी गाड़ी में जाना स्वीकार न किया और आप बस में बैठकर ही अमायन आये।

पूर्व में एक बार ऐसा ही प्रसंग बना कि अमायन में शिविर का कार्यक्रम होना था, आप मौ में विराजमान थे। उस समय जीव राशि बहुत पैदा हो रही थी, सड़क पर चींटा बिछे रहते थे। आपसे काफी आग्रह करने पर आपने आना मंजूर नहीं किया।

बोले–गाड़ी में बैठकर जायेंगे, कितनी हिंसा होगी ? सोचते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं, अतः अभी न जा सकेंगे।

116. देव, गुरु, धर्म के प्रति अनन्य भक्ति

देव, गुरु, धर्म और उनके आयतन मंदिर आदि के प्रति आपके हृदय में इतनी अनन्य भक्ति है, उसके रख-रखाव, उसकी साफ सफाई का आपको इतना ख्याल है जितना कि एक गृहस्थ को भी अपने बैठक की सफाई का नहीं होता। थोड़ा सा प्रमाद या थोड़ी भी आसादना देखने में आप असह्य हैं (सहन नहीं कर सकते)

ऐसी एक नहीं सैकड़ों घटनायें हमने अपनी आँखों से देखीं हैं, लिखने में तो क्या लिख सकता हूँ ?

मौ की बात है-मंदिर जी में वेदी के सामने कोई बालक गंदगी कर गया। आप पूजन के लिये मंदिर जी में गये-देखते ही आपके रोंगटे खड़े हो गये, हृदय रो उठा, इतना भी सहन न कर सके कि किसी से कहकर साफ कराते, स्वयं ने उसी अवस्था में अंगोछा पहन कर गंदगी साफ की पश्चात् आकर कपड़े बदले और शास्त्र सभा में आकर कहा कि-दर्शन, पूजन, स्वाध्याय कोई रूढ़ी की क्रिया नहीं है कि गंदगी डली रही और सभी दर्शन कर आये, पूजन कर ली। एक थाली की द्रव्य दूसरे में चढ़ा दी, पूजा हो गई। हमारे घर में गंदगी डली हो और हम भोजनादि कार्य करते रहें, क्या संभव है ? ऐसे मधुर और कटु शब्दों में वेदना व्यक्त की।

117. तत्त्वज्ञान से संस्कारित पीढ़ी

संस्कृति की सुरक्षा, त्यागी परंपरा का उज्ज्वल भविष्य, समाधि स्थल (जहाँ समाधि कराने की समुचित व्यवस्था हो) कल्याणार्थी भव्य जीवों को समागम का मौका, तत्त्वज्ञान से संस्कारित पीढ़ी आदि अनेक मार्मिक पीड़ाओं से कराहते हुए समय-समय पर आपको कई बार देखा।

जब भी प्रासंगिक चर्चायें हो जातीं, आपका जोशीला मन तुरन्त खड़ा हो जाता, हृदय गंभीर हो जाता, अंतर उस सुखद घड़ी की तलाश में खो जाता कि कब हृदय की वेदना शांत होगी और आँखों के सामने इसे सम्पन्न होते देखूँगा।

118. शिथिलाचार में शामिल नहीं

"आवश्यकता की पूर्ति होना चाहिये, तकलीफ में सुविधा दें पर विलासिता का पोषण नहीं होना चाहिये। भाई ! देव, शास्त्र, गुरु की मर्यादा का ख्याल तो रखो।"-ऐसे वेदना भरे शब्द-दुखित मन से तब प्रकट हुए-

जब आपने किसी भाई, बहिन को जिनके घुटनों में दर्द रहता था, शास्त्र सभा में सामान्य पाटा डालकर बैठ जाने की छूट दे दी थी परन्तु अति हो गई, पाटा के स्थान पर बड़ी चौकी हो गई-इतनी ऊँची जो शास्त्र जी से भी ऊँची निकल गई, वह भी सामान्य नहीं, आधुनिक चमक-दमक से सुसज्जित। जिनवाणी जिस पर विराजमान होती, उससे भी सुंदर-बैठने के आसन।

ये बात तो आप कई बार कहते कि मंदिर से सुंदर हमारे घर और कमरे नहीं होना चाहिये। मंदिर से अच्छा पत्थर भी घर में न लगाओ। ऐसे मर्यादा पुरुषोत्तम आ. पं. जी छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी बातों का जीवन में हर पल ख्याल रखते।

अंत में यही कहना पड़ा कि–हम आँख मूंदकर यह सब नहीं देख सकते, हम हट जायेंगे पर आपके शिथिलाचार में शामिल नहीं हो सकते।

119. हम अन्याय कर रहे हैं

साथ में रहने वाले भाई (बच्चों) के पढ़ने की उम्र है, हमने इनको पढ़ाया नहीं, यह इनके साथ अन्याय है। जिसकी जिस क्षेत्र में प्रतिभा है, उसे उस प्रकार की सुविधा, साधन दें और विपरीत दूसरी ओर उलझनों में अटकाने पर उस प्रतिभा के साथ अन्याय है।

बच्चों को माँ–बाप संस्कार न देकर मात्र सुविधायें ही मुहइया करते रहें–ये बच्चों के साथ अन्याय है। पद विरुद्ध कार्य अन्याय है। ये जीवन साधना–आराधना, धर्म–धर्मायतनों की सेवा, वैयावृत्ति के लिए मिला है, ऐसा न करने पर हम अपने साथ अन्याय कर रहे हैं।

जिन माँ–बाप ने पाल पोसकर बड़ा किया, उनकी हम यदि समाधि नहीं कराते, धर्माराधन में सहायक नहीं होते तो हम उनके साथ अन्याय कर रहे हैं। अन्याय की उक्त व्याख्या आ.ब्र.जी ने समझायी।

120. आशीर्वाद

पाणिग्रहण संस्कार के पश्चात्.......

पूज्यनीय ब्र. रवीन्द्र जी इन दिनों गौरझामर प्रवास पर थे। संकोचता से फोन पर मेसेज भेजा–आशीर्वाद की याचना परोक्ष रुप से की गई–**जितना संयम, उतना आशीर्वाद** का कथन कानों तक आया, साथ ही साथ संयम जीवन की साधना है, इसी के साथ अपने को रखना, सुरक्षा भी है और समृद्धि का कारण भी है–

1. स्वास्थ्य 2. संयम 3. स्वाध्याय का सतत् ख्याल रखना, मात्र बाहरी शारीरिक पोषण को ही स्वास्थ्य मत मान लेना– इससे निरंतर भेदज्ञान बनाये रखना।

संयम के नाम पर व्रत– कुछ छोड़ दिया, शारीरिक तप में ही संतुष्ट नहीं हो जाना। पढ़ना, लिखना, सुनना, सुनाना, रटना मात्र इसी को स्वाध्याय की संज्ञा मत दे डालना। अपना अन्तर्पुरुषार्थ बढ़ाना।

121. वांछा ही बाधा है।

लघु सम्मेदशिखर जी द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र पर आध्यात्मिक संगोष्ठी चल रही थी। वंदना का भाव बना। एकाएक पर्वत की ओर चल पड़े। पं.जी साहब ने अपनी जेब में गोला रख लिया। भगवान पार्श्वनाथ जी (सहस्रफण) की वेदी पर पहुँच कर पूजन आरंभ की। छोटा सा पाटा था। पं. जी साहब उस पर बैठ गये, मैं नीचे खड़ा रहा। पूजन चलती रही,जयमाला में पंक्ति आई–'वे पुण्यशाली भक्त जन की सहज बाधा को हरें।' मैंने पुस्तक से पढ़ी। पं.जी भावों से पढ़ रहे

थे, उन्होंने बाधा के स्थान पर वांछा शब्द का उच्चारण किया। पंक्ति दोहराई, बोले- सही तो है-वांछा ही तो बाधा है, प्रवचन में भी उस दिन इस शब्द पर प्रकाश डाला।

जयमाला पर गोला दिया, हमने विसर्जन किया। पूजनोपरांत आप पाटा से नीचे खड़े हो गये, बोले-इस पर खड़े हो जाओ। मैं कुछ समझ नहीं पाया, खड़ा हो गया। गद्दी संभालना मैं अब निर्भार हुआ। जैनशासन की निर्दोष परम्परा का निर्वाह होता रहे। हृदय शांत था, आँखों में अश्रु, इतना बड़ा भार ? पता नहीं आपने क्या देखा ? भगवान पार्श्वनाथ के चरणों में नमन कर इतनी सी विनती की-भगवान शक्ति भी देना, भक्ति भी देना, क्षमता भी देना, समता भी देना। संयम की साधना करना और जैनशासन की सेवा वास्ते सर्वस्व समर्पण कर देना।

क्षेत्र से क्या नियम लेकर जा रहे हो ?

मैंने कहा-आज्ञा पालन ! इससे ज्यादा क्या कह सकता हूँ ?

122. अकेले कैसे ?

दोपहर विश्रांति के पश्चात् जागा, उसी समय आदरणीय ब्र. जी ने बुलाया, माँ से पूछा ? उन्होंने कहा- अभी सो रहे हैं। वापिस चला गया। मुझे आभास हुआ, मैंने माँ से पूछा कौन था ? बोले-पं. जी ने बुलाया है। उठकर पानी पिया और तुरन्त मैं ब्र. जी के निकट उपस्थित हो गया।

उस वक्त आप स्वाध्याय कर रहे थे, योग्य अभिवादन कर मैं बैठ गया, आप बोले-जगाया या जाग गये। मैंने कहा-जाग गये थे।

अकेले सो रहे थे या.... ?

मैं झिझका परंतु तुरन्त बोला–अकेले ही सो रहे थे।

तत्त्व दृष्टि से अनभिज्ञ (मोही) व्यक्ति को यथार्थ कहाँ दिखता है ? आपकी अलौकिक और सूक्ष्म दृष्टि ऐक्सरे की किरणों की भाँति अंतर में जाकर अंतर की यथार्थता का दिग्दर्शन करा देती है।

बोले–शरीर और जीव–दो का संयोग होने पर भी अकेले सो रहे थे–ऐसा कैसे मानते हो ? जिस दिन जीवत्व का श्रद्धान होगा, शरीर भिन्न भासित होगा, उस दिन अकेले कहना। मैं भौंचक्का सा देखता रह गया। यथार्थ यही था।

123. कपड़े ढंग से पहनना

पाश्चात्य सभ्यता में हमारी वेशभूषा कितनी विकृत हो चुकी है और हम उसमें कितने रच–पच गये हैं कि उसमें कुछ अटपटा ही नहीं लगता। अपने बालकों को हम स्वयं फिल्मी अभिनेता और अभिनेत्रियों के पहनने जैसे वस्त्रों का प्रयोग करते हैं। हमें न उसकी उपयोगिता का ख्याल है, न मौसम से बचाव का, न अपनी संस्कृति का, न धर्म का ? बस पाश्चात्य की दौड़ में बढ़े चले जा रहे हैं।

सभी में मूल कारण '**प्रयोजन पर दृष्टि का न होना है।**' वस्त्र हम क्यों पहिनते हैं ? बाहरी मौसम से बचे रहें, शील का संरक्षण हो, स्वयं के व देखने वालों के परिणाम विकृत हों–ऐसे वस्त्रों का उपयोग कदापि नहीं करना चाहिये।

दीदी मुम्बई से आकर जब मिलीं और चर्चा के मध्य सूक्ष्म दृष्टि के धनी परमादरणीय पं. जी साहब से आपने पूछा कि–कपड़े ढंग से पहिनने का क्या मतलब है ? तब आपने उक्त जबाब दिया। आप बोले– कपड़े मुझे छू न जायें, भिन्न रहें–ऐसे भेद पूर्वक अंगीकार करना।

124. दर्शन–कहाँ हुये ?

आ. ब्र. जी से एक सज्जन आकर मिले। योग्य विनय कर कुशल क्षेम पूछी। गद्गद् होकर बोले–"बहुत अभिलाषा थी, आज दर्शन हुये।"

सजग व तात्त्विक दृष्टि कोण के धनी ब्र. जी बोले–कहाँ हुये ? तुम जिसे देख रहे हो वे हम नहीं हैं। इन आँखों से दर्शन नहीं होंगे। इन हाथों से विनय नहीं होगी। अंतर में जब तुम स्वयं को जानोगे, सच्चे अर्थ में तभी मुझे पहिचान पाओगे, नहीं तो संयोग, शरीर, औदायिक भाव मात्र ही देखकर समझ लोगे और संतुष्ट हो जाओगे कि यही ब्रह्मचारी जी हैं।

125. गांठ की द्रव्य

आ. ब्र. रवीन्द्र जी से निम्न मुहावरे का भाव पूछा तो आप सहज ही कहने लगे–

'गांठ की द्रव्य ही काम में आती है' पूंजी से ही व्यापार होता है, अपना श्रद्धान, ज्ञान–ये गांठ की द्रव्य है।

सीताजी को दहेज में राजा जनक ने कितना द्रव्य दिया था परन्तु उदय की प्रतिकूलता–जंगलों में उसे क्या काम आया ? जो उनकी अंतर की पूंजी–गांठ की द्रव्य–तत्त्व का श्रद्धान, ज्ञान का बल था, वही सहाय बना।

तत्त्व श्रद्धान अर्थात् पर का दोष दिखाई न दे, न कोई दुखी कर सकता, न सुखी करता है। वस्तु में परिणमन होता है, हम अपनी मान्यता के अनुसार उसमें सुख–दुख की कल्पना कर लेते हैं।

126. वस्तु का स्वतंत्र परिणमन

एक भाई संपत्ति के विषय में चर्चा कर रहे थे। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' इस व्यापक दृष्टिकोण को रखने वाले आ. ब्र. रवीन्द्र जी सहज रूप से बोले–

''बाह्य संपदा पर यदि कोई अपना अधिकार जताये तो हमें अपना अधिकार छोड़ देना चाहिये। फिर क्या होगा? यह कभी नहीं सोचना क्योंकि यह सामग्री पुण्य की चेरी है, वह पुण्य–परिणाम के आधीन है। भगवत् भक्ति में अपने चित्त को लगाये रखना अर्थात् उनके मार्ग का श्रद्धान रखना। भीषण प्रतिकूलता के प्रसंग बने फिर भी चलायमान मत होना। अधिकार की याचना नहीं करना। इस परिस्थिति में जिन भक्ति ही एक मात्र मेरा कर्तव्य है, उसी को कवच स्वरूप धारण करना, विजय तुम्हारी होगी।''

बाह्य वस्तुओं पर अधिकार जमाना, उनके लिये याचना करना– ये बड़े पुरुषों को शोभा नहीं देता। वैसे भी देखा जाये तो पर वस्तु का परिणमन स्वतंत्र है, फिर हमारी खींचातानी से क्या होगा?

'जिस द्रव्य का, जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जिस भाव से जो परिणमन सुनिश्चित है, उसे कौन आगे–पीछे करने में समर्थ है–इस महा सत्य का कभी भी विस्मरण नहीं करना।'

127. धन्य है आपका धैर्य

आदरणीय ब्र. रवीन्द्र जी 'आत्मन्' विपरीत परिस्थिति के समय भी आपका गौरव, साहस, धैर्य, परिश्रम... ।

1. एम.ए. के छात्र होते हुये भी आपके जीवन में कभी सूट-बूट पहिनने का विचार भी मन तक न आया अपितु उस समय भी आपकी वेश-भूषा में साधारण खादी का कुर्त्ता-पजामा, टायर की चप्पल थी, उसमें भी दीनता नहीं, गौरव था। प्रतिभाशाली छात्रों में आपकी गिनती थी, अतः आपकी कक्षा में शिक्षकों के हृदय में भी एक अनूठी छाप थी।

2. उच्च कक्षा में भी फाइलों की उपलब्धता न थी। सुना था सरस्वती और लक्ष्मी की मित्रता नहीं है। अर्थाभाव को जगत गरीबी की संज्ञा देता है परन्तु जो हित-अहित, सत्य-असत्य, अच्छे-बुरे... के सोचने, समझने की शक्ति से हीन हैं, वे गरीब हैं।

आपकी सजग प्रज्ञा अमीरी का परिचायक थी, अतः अखबारों में बचे हुए पेजों को बांध लेना, यही आपकी फाइल होती थी।

3. शयन के लिये एक समय आपको रुई का गद्दा भी नसीब न हो पाया, उस समय भी आपने कार्टूनों का गद्दा बनाकर रातें बिताई। अयाचीक वृत्ति के धनी बड़े ही शांत भाव से संतोष पूर्वक, धैर्य और साहस से अपने कार्य में लगे रहे।

उपरोक्त परिस्थिति में भी आपने बड़ी ही लगन और निष्ठा के साथ अध्ययन किया।

4. जीवन में ऐसे भी समय आये कि चबाने को चने नहीं और कभी किशमिशों की भी कमी नहीं परन्तु ऐसा कभी नहीं हुआ कि किसी समय संक्लेशता हो और कभी अभिमान की वृद्धि–दोनों ही समय शांति और समता को भरपूर आदर दिया।

5. जीवन में कषाय परिणाम कभी दिखते जो धर्म, धर्मात्मा, धर्मायतन पर्यन्त संयम की सुरक्षा आदि के संबंध में रहते, पर मन में उनके प्रति भी सदैव खेद वर्तता और उस समय प्रायश्चित व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, जीव के परिणामों की हीनता आदि का विचार कर समता भाव धारण करते और ऐसे प्रशस्त राग को सदैव धिक्कारते जिसके पीछे कषाय हो, भावना यही रहती जितना साम्यभाव होना चाहिये, उतना साम्यभाव जीवन में आवे।

128. पुण्य नहीं बढ़ेगा ?

एक बार आपसे ब्र. सुमतिप्रकाश जी ने चर्चा के मध्य पूछा कि–

पं. जी साहब ! हमारे पास जो फण्ड है, विचार आ जाता है कि मँहगाई इतनी बढ़ रही है, पाँच वर्ष में ही कई गुनी बढ़ जाती है, भविष्य का कार्य कैसे चलेगा ?

आप सहज भाव से बोल उठे–मँहगाई बढ़ेगी सो तो ठीक है, क्या तुम्हारी विशुद्धि नहीं बढ़ेगी ? इच्छाएँ नहीं घटेंगी ? पुण्य नहीं बढ़ेगा ? और निश्चिंतता के लिये **'ध्रुव फण्ड नहीं' ध्रुव दृष्टि चाहिये।**

129. समय के पाबंद

जब आप कॉलेज में अध्यापन का कार्य करते थे, उस समय भी आप समय के इतने अनुशासित थे। आप भोजन कर रहे और कॉलेज की घंटी बजी, आपने पूरा भोजन तक न किया, थाली ढककर रख दी और (लंच) के समय आकर ही आपने पूरा भोजन किया।

130. अयाचीक वृत्ति

अयाचीक वृत्ति के धनी दिगम्बर जैन साधु होते हैं जो कि जिनेन्द्र भगवान के मार्ग पर बढ़ रहे हैं, इन्हीं के मार्ग पर चलने के लिये उद्यमशील, पुरुषार्थी आदरणीय ब्र. रवीन्द्र जी से निवेदन की भाषा में भाई चिदानंद जी बोले-पं. जी साहब आपकी भी आश्रम की तरह एक कुटिया बनेगी, जहाँ धर्म प्रभावना का कार्य व आराधना होगी। मुम्बई के एक भाई स्वाध्याय भवन के नाम से एक लाख रुपये की राशि देते हैं, अपन यदि यहाँ से एक पत्र लिखें तो वो फोरन अपने लिये राशि मंजूर कर देंगे और अपन भी फटाफट काम निपटा लेंगे।

बिना सोचे-समझे, सहजता से आप तत्काल बोले-"हमारे यहाँ प्रार्थना पत्र नहीं लगाये जाते। इस तरह पैसा नहीं मांगते। दान देने की वस्तु है, मांगने की नहीं और फिर हमारे यहाँ कोई कमी नहीं है, आवश्यकता भी नहीं। हम भवन में नहीं, घास-पूस की कुटिया में आराधना करेंगे और आराधना के लिये इन बाह्य आडम्बरों की आवश्यकता भी नहीं होती" ऐसा जवाब सुनकर भाई चिदानंद जी मुंह ताकते रह गये। श्रद्धा से हृदय उमड़ पड़ा और सहज ही हाथ जुड़

गये। वहीं पास में मैं बैठा था, मुझे ख्याल आया–याचना करना तो दूर कहने पर भी इस तरह निशंकता पूर्वक इंकार।

धन्य है आपकी अयाचीक वृत्ति को।

131. उत्तम त्याग धर्म

आप (ब्र. रवीन्द्र जी 'आत्मन्') भावुकता वश बाह्य त्याग पर बल न देकर अंतरंग भावात्मक पक्ष मजबूत बनाने की ही प्रेरणा करते।

हमें त्याग, हमें प्रण–इस बात का करना है कि किसी भी परिस्थिति में चाहे जितनी विपत्ति हमारे ऊपर आ जाये, हम आत्मघात (आत्म हत्या) जैसा जघन्य अपराध नहीं करेंगे, चाहे दुःख का पहाड़ टूट पड़े, इष्टजनों का वियोग हो जाये, लोक में अपवाद हो जाये,अपयश फैले, किसी के द्वारा मान भंग किया जाये–हर परिस्थिति में धैर्य धारण करते हुए साम्य भाव का अभ्यास करेंगे।

कर्म के उदय का विचार करके धैर्य धारण करेंगे। परिस्थिति से समझौता करेंगे, चित्त को मलिन नहीं करेंगे, साम्य सुधारस को पीकर रहेंगे।

132. भगवान के माता–पिता नहीं, भगवान बनो

पाषाण से भगवान बनाने वाला महामहोत्सव पंचकल्याणक–प्रसंग खड़ैरी, जिला–दमोह के कार्यक्रम से पूर्व का है।भगवान के माता–पिता बनने का सौभाग्य मिला। आप आकर आदरणीय ब्र. जी से मिले। अंतर उत्साहित था, योग्य विनय के पश्चात् चर्चा करने लगे, बोले–पं. जी हम पंचकल्याणक में माता–पिता बनने जा रहे हैं।

आत्महितार्थ ही एक मात्र जिनका लक्ष्य था ऐसे ब्र. जी बोले- माता-पिता बनने से कार्य सिद्धि नहीं, भगवान बनो, लक्ष्य निर्धारण करो, जिसके आश्रय से वे भगवान बने, उसी का आश्रय तुम भी करो और वर्तमान में भी जिस पात्र का आप अभिनय कर रहे हैं वह बहुत पवित्र, उदार, त्याग, संयम की परम्परा का परिचायक है, साक्षात् मोक्षगामी तीर्थनायक के माता-पिता साधारण बात नहीं होती। अब आपकी जिम्मेदारी विशेष है। शेष जीवन में कोई ऐसा प्रसंग न बन जाये, जो शासन की अप्रभावना का निमित्त बने। मर्यादित जीवन आपकी जिम्मेदारी है, उनके समान ही अपनी भावना रखना।

133. चौका

सिद्धायतन द्रोणगिरि क्षेत्र पर आदरणीय ब्र. जी का प्रवास था, बाहर से आत्महित की भावना से सैकड़ों साधर्मी पधारे हुये थे जो दो समय जिनवाणी का रसास्वादन करते एवं क्षेत्र की वंदना करते।

ब्र.जी ज्ञान दान से सभी को रसास्वादन कराते व साधर्मी भी ब्र. जी के आहार दान को आतुर रहते। भक्तिभाव से क्षेत्र पर पधारी नवीन बहिनों के मन में भी जिज्ञासा रहती-हमे पं. जी के चौका में जाना है। जो अंदर नहीं जा सकते वे मुझे पं. जी का चौका देखना है, कृत, कारित, अनुमोदना से श्रावक लालायित रहते।

एक बहिन यथायोग्य अभिवादन कर भोलेपन से पूछने लगी- मुझे आपका चौका देखना है ?

सदैव सजग जागृत रहने वाले आप बोले–तुम चौका देखो, मुझे आत्मा देखने दो। अरे! चौका भी कुछ देखने की चीज है? देखने और दिखाने की वस्तु तो एक मात्र आत्मा ही है और चौका समझती भी हो?

शुद्ध भोजन को चौका कहते हैं।'चौका' कहने का कारण यह है कि शुद्ध भोजन वास्तव में यही है, जिसमें निम्न चार गुण हों–

1. जो न्याय पूर्वक कमाया गया हो।
2. यत्नाचार पूर्वक बनाया गया हो।
3. वात्सल्य पूर्वक खिलाया गया हो।
4. अनासक्ति पूर्वक खाया गया हो।

134. मन दुखता है

'वसुधैव कुटुम्बकम्' का व्यापक दृष्टिकोण, आपको पंथ, जाति, रिश्ते, परिवार के व्यामोह में बांध न सका। कई प्रसंगों पर आपका परिचय जानने का प्रयास किया परन्तु आपका जवाब–

बोले–'वायु किसकी होती है? सूर्य किसका होता है?'

निर्दोष जीवन जीने वाले आ. ब्र. जी, जिन्होंने जीवन भर कभी भी ऐलोपेथिक औषधि तो दूर आयुर्वेदिक रस–रसायनों का प्रयोग भी नहीं किया अपितु प्रासुक काष्ठाादि औषधियों से ही अपना उपचार करते, रसोई ही जिनकी औषधि थी।

परिवार में आपके भतीजे का एम.बी.बी.एस. में सिलेक्शन हो गया, जब इस बात से आपको अवगत कराया, कुछ समय के लिये तो

आप मौन रहे, गंभीरता भंग करते हुए सिर्फ इतना ही कहा–

"सुनकर मन दुखता है। धर्म रुचिवंत प्रतिभाओं का उपयोग धर्मात्मा, धर्मायतन, त्याग, संयम के क्षेत्र में हो तो बात ही कुछ अलग होगी।"

बाद में आपसे मिलना हुआ तब भी आपने साथ में आयुर्वेद का अभ्यास करने की प्रेरणा की ताकि आप भविष्य में किसी त्यागी, संयमी का उपचार कर सको।

135. मार्गदर्शन

सन् 1980 में पहली बार श्रद्धेय पं. जी साहब का धर्मोपदेश सुना और हमें निवृत्ति (ब्रह्मचर्य व्रत) लेने की भावना जगी तब हमने पं. जी से कहा– हम निवृत्ति लेना चाहते हैं, आप हमें मार्गदर्शन दें।

तब परमादरणीय पं. जी अपूर्व वात्सल्य भाव से बोले– "बेटा! अपन ने व्रत अनंतबार धारण किये पर द्रव्यदृष्टि एक बार भी नहीं की द्रव्यदृष्टि बनाने के लिये निवृत्ति लेना, जिससे व्रत लेना भी सार्थक होगा।"

हमने कहा–द्रव्यदृष्टि क्या है ?

तब पं. जी बोले–"अपने को सिद्ध स्वरूप देखना व सबको अपने समान देखना। सभी जीवों को द्रव्यदृष्टि से भगवान आत्मा देखोगे तो किसी के साथ दुर्व्यवहार नहीं होगा।

भोगों का मार्ग तो सरासर पाप का, दुःख का मार्ग है। निवृत्ति मार्ग आनंदमय, सरसतामय है क्योंकि आत्मा अपने ही आत्मिक रस से, शांत रस से परिपूर्ण, परम सरस है।

निवृत्ति के मार्ग का उत्साह बढ़ गया और हम निवृत्ति मार्ग में प्रसन्नता से आ गये।

पं. जी साहब के मार्गदर्शन का ऐसा जादू हुआ कि हमें आज भी किसी भी परिस्थिति में भटकाव, रुकावट, दीनता–हीनता नहीं आयी।

136. मंगल संदेश

कुछ साधर्मी जयपुर शिक्षण शिविर से वापिस लौट रहे थे, उनका श्रद्धेय पं.जी साहब से मिलने का भाव हुआ। सभी साधर्मी जसवंतनगर पहुँचे। पता चला वहाँ से एक दिन पूर्व ही पं. जी साहब करहल निकल गये। बहुत परेशान होकर दूसरे दिन सुबह करहल पहुँचे। वहाँ जब पं. जी को मार्ग की परेशानी बतायी तब पं. जी बोले–

''जितना परिश्रम हमसे मिलने का किया, उतना पुरुषार्थ अपने से मिलने का किया होता तो मोक्ष हो जाता। इस जगत में मोह ही सबसे ज्यादा परेशान करता है, अतः मोह को जीतो।''

137. सावधानी

अमायन से हम पहली बार प्रभावना के लिये जा रहे थे तब हमने पं. जी से पूछा कि–वहाँ क्या–क्या सावधानी रखें?

तब पं. जी बोले–'देह दृष्टि न हो पाये व कर्तव्य का अहंकार न आ पाये–इसका ध्यान रखना। तुम्हारी आराधना सर्वत्र होती रहेगी क्योंकि '**आराधक ही प्रभावक होता है।**'

138. मूल तत्त्व समझो!

प्रवचन की कोई भी अच्छी चर्चा श्रद्धेय पं. जी साहब के पास दुहराते थे तो हमेशा यही कहते थे–'अच्छी तो आत्मा है।' देव–गुरु–धर्म सच्चे मिल गये तो उनकी शरण में आकर विनय, भक्ति बहुमान पूर्वक आत्मा (अपने) को समझकर कल्याण कर लो। प्रवचन में जो आता है वह सब तुम्हें शास्त्र में मिलेगा, तुम खूब स्वाध्याय करो।

स्वलक्ष्य सहित विधि पूर्वक, रुचि सहित स्वाध्याय करते तो वे जब सुन्दर चर्चा जिनवाणी में सर्वत्र मिलती तब पढ़कर मन प्रसन्न हो जाता था, समझने की जिज्ञासा बढ़ती थी।

हमेशा मूल ग्रंथ पढ़ने और मूल तत्त्व से जुड़ने की प्रेरणा उनके जीवन व धर्मोपदेश में मिली।

139. सम्बोधन!

परमादरणीय पं. जी जब भी अमायन से प्रभावना हेतु बाहर जाते तब हम सबको संबोधन करके कहते–

"यहाँ तुम सूनापन नहीं, शांतता का अनुभव करना, मन प्रसन्नता से धर्मध्यान में लगेगा।"

कभी पं. जी साहब के श्री मुख से ऐसा नहीं सुना कि हमने इतना लिखा, हमने ये काम किया। सचमुच हमेशा कर्तृत्त्व व अहंकार से दूर रहने वाले महापुरुष थे।

140. मोह का वमन

टीकमगढ़ से अमायन आकर जब भी पं. जी साहब से मिलने जाते, वंदन कर स्वास्थ्य पूछते तो कहते–ठीक है। उतने ही समय में सब साधर्मीजनों की कुशल स्वास्थ्य, स्वाध्याय, आराधना–प्रभावना एवं सामाजिक परिस्थिति के संबंध में पूछ लेते, योग्य शिक्षा भी दे देते।

एक बार हमने कहा–एक बहिन को रास्ते में बहुत उल्टी हुई, तकलीफ भी रही तब श्रद्धेय पं. जी साहब बोले–

''एक बार जिन वचनों का प्रचुर प्रीति सहित अभ्यास करके मोह का वमन कर दो तो अनंत काल तक न तकलीफ होगी, न परिभ्रमण का दुःख।''

सचमुच स्वयं निस्पृह रह सबको हित की शिक्षा देना आ. पं. जी साहब का नितप्रति कर्तव्य था।

141. हित की शिक्षा

कभी किसी बहिन का भाव अमायन आने का होता था, पं. जी साहब को बतायें–अमुक बहिन समागम में आना चाहती है, तब पं. जी साहब कहते–

''कह दो–आओ! श्रम करो, सत्संग में रहकर असंग की आराधना करो। जीवन आराधना–प्रभावना के लिए मिला है।

आचरण से प्रभावना करो, अहिंसक जीवन शैली बनाओ, मर्यादा का उल्लंघन नहीं करो, आत्म निरीक्षण रोज करो, विपरीत

विचार को शत्रु समझ दूर करने का उपाय करो। समय, शक्ति बर्बाद नहीं करो, सत्कार्यों में सदैव सदुपयोग करो, जिससे आगे निर्दोष धर्म की परम्परा चले। ऐसी उत्तम शिक्षा देते थे।

आगम के विरुद्ध न सोचो, न बोलो, न करो। आगम की अवहेलना महापाप है।''

142. अपने अनंत गुणों में बैठे हो

यात्रा सागर की ओर गतिमान थी। पूज्य पं. जी ब्र. रवीन्द्र जी 'आत्मन्' आगे की सीट पर विराजमान थे। सारथी के कर्तव्य का निर्वहन अभय भैया सागर कर रहे थे। हम दो–तीन भाई कार की पीछे वाली सीट पर थे। वात्सल्य से अभिसिंचित भाई कहीं और विराजमान थे। अचानक पं. जी साहब ने पूछा–कहाँ बैठे हो ?

पीछे वाली सीट पर पीछे से आवाज आई।

अनेकान्त रूपता को अपने में समाये हुये वात्सल्य सिंचित, तत्त्वज्ञान पूर्ण, देह–आत्मा के अध्यास को चीरती हुई पूज्य पं. जी साहब की वाणी प्रस्फुटित हुई–

''सीट पर बैठे हो कि अपने अनंतगुणों में बैठे हो।''

सभी भाई के चेहरे प्रसन्नता से ऐसे खिल गये जैसे चन्द्रमा की चाँदनी का निमित्त पाकर कुमुदनी का फूल खिलता है।

अतः सत्य ही कहा है–सत्समागम सच्ची प्रसन्नता का आधार है।

143. प्रेरणादायी संस्मरण

1.

पं. जी साहब ने पूछा–'सरल' का क्या अर्थ है ? तो हमने कुछ नहीं कहा। फिर पं. जी बोले–'निज आत्मा को आत्मा ही जानना है सरलता। अपने को लड़की नहीं मानना, अपने को आत्मा मानना– इसका नाम 'सरलता' है।

2.

एक बार पं. जी बोले कि रत्नों की प्रतिमायें कैसे बनीं ? जो व्यापारी रत्नों का व्यापार करते थे, उनको कोई भी अच्छा रत्न मिला और उसे रख लेते थे कि इस रत्न से हम भगवान कि प्रतिमा बनायेंगे। ऐसे ही हमें कोई अच्छा लड़का दिखता है तो ऐसा लगता है कि इन्हें सम्हाल कर रखो–ये हमारे धर्म की रक्षा में काम आयेंगे।

3.

पं. जी साहब ने पूछा–मम्मी से बात कब से नहीं हुई ? तो हमने कहा–बहुत दिन हो गये। पं. जी बोले–बहुत दिन हो गये ? तो हमने कहा–हाँ बहुत दिन हो गये।

तब पं. जी बोले–नीचे रोज प्रवचन में क्या सुनाते हैं ? मम्मी ही अपनी लगती हैं, वह घर ही अपना लगता है। जिनवाणी माता अपनी नहीं लगती, शुद्धात्मा अपना नहीं लगता। अभी तक देह दृष्टि ही है। जब तक देह दृष्टि रहेगी तब तक कुछ समझ में नहीं आयेगा। इस मोह पर तीव्रता से प्रहार करो। अब तो यह मोह छोड़ देना चाहिये।

4.

पं.जी साहब ने पूछा–क्या स्वाध्याय किया ? तो हमने कहा–ब्रह्मचर्य निर्देशिका पढ़ रहे थे।

पं. जी साहब बोले–निर्देशिका का निर्देशक कौन है ? हम चुप रहे। मन में आया कह दें कि आप हैं लेकिन कुछ बोले नहीं।

तब पं. जी साहब बोले–निर्देशिका का निर्देशक शुद्धात्मा है, यदि शुद्धात्मा का आश्रय होगा तो ब्रह्मचर्य अपने आप पलेगा, पालना नहीं पड़ेगा। शील के अठारह हजार भेद अपने आप पलेंगे। यदि गिन–गिन कर पालोगे तो दोष लगे बिना रहेंगे नहीं।

5.

पं. जी का स्वास्थ्य खराब होने पर उनसे पूछा कि–आपके लिये हम और क्या कर सकते हैं ? जिससे स्वास्थ्य जल्दी सही हो जाये तो पं. जी बोले–मंगल कामना कर सकते हैं।

6.

स्वाध्याय का समय हो गया और भैया पं. जी के पास ऊपर थे तो भैया बोले–हम नीचे जा रहे हैं, तो पं. जी बोले–नीचे जाना माने स्वाध्याय छोड़कर विकथा में जाना। विकथा छोड़कर स्वाध्याय सुनना यह ऊपर जाना है।

7.

पं. जी ने पूछा–देखो कौन है ? हमने कहा–कोई भी नहीं है तो पं. जी बोले–छः द्रव्य हैं कि नहीं ? और तुम कहते हो कोई नहीं है।

8.

बहुत सर्दी पड़ने पर एक बार पं.जी से कहा– आज बहुत सर्दी है तो पं.जी बोले–आज बहुत सर्दी है, बहुत गर्मी है–यह मत देखो, सर्दी और गर्मी मेरे में नहीं है, यह देखो।

9.

भोजन के समय पूछते–यह चीज बना लें, नुक्सान तो नहीं करेगी ? तो पं. जी कहते–जितना नुक्सान कषायों से होता है, उतना किसी से नहीं होता। हमेशा यह ध्यान रखना कि–

'जागे नहीं कषायें, नहीं वेदना सतावे।'

10.

एक बहिन का स्वास्थ्य खराब होने पर पं. जी ने पूछा– अब कैसा स्वास्थ्य है तो उसने कहा कि–हाथों का कंपन सही नहीं है तो पं. जी बोले–श्रद्धा कंपायमान नहीं हो, परिणाम नहीं कपें–इसका ध्यान रखना। शरीर का परिणमन तो अपने आधीन नहीं है।

11.

एक बार पं.जी ने पूछा–कितने भाई–बहिन हो ? हमने कहा–तीन। तो पं. जी बोले–क्या साधर्मी भाई–बहिन अपने नहीं हैं ? शरीर का सगापना ही अपना लगता है। वास्तव में सच्चा सगापना तो साधर्मी में होता है।

144. अमृत वचन

प्रथमबार सन् 1993 में हम बड़े पं. जी साहब के पास पहुँचे। जब हमारी उनसे भेंट हुई उस क्षण पं. जी हमसे अत्यंत प्रसन्नता पूर्वक मिले। हमारा रोम–रोम रोमांचित हो गया। हमें फल दिये, जब हम उन्हें रखने लगे तो कहा कि–भविष्य की चिंता मत करो, अभी ग्रहण करो। हमने फल ग्रहण किये, हमें बहुत अच्छे लगे। हमने उस दिन पं. जी साहब के प्रवचन में पहली बार सुना था कि–

'ज्ञेयों से ज्ञान नहीं होता, परिग्रह से प्रभुता नहीं आती, विषयों से सुख नहीं होता।' यह वचन हमें अन्दर ही अन्दर अत्यंत खुशी दे रहे थे। हमने कहा–पं. जी ज्ञेयों से ज्ञान नहीं होता, परिग्रह से प्रभुता नहीं आती, विषयों से सुख नहीं होता–यह वचन हमें बहुत खुशी दे रहे हैं तब पं. जी ने कहा–

'यही तो अपनी प्रभुता है कि हमें ज्ञान रूप परिणमन के लिए ज्ञेयों की जरूरत नहीं, सुख रूप परिणमन के लिए विषयों की जरूरत नहीं है, प्रभुता रूप परिणमन के लिए परिग्रह की जरूरत नहीं है। निरपेक्ष प्रभुता को सुनने में, समझने में, स्वीकारने में खुशी क्यों नहीं होगी ? जिसमें पामरता मिटती हो, प्रभुता प्रगटती हो। इच्छाओं से ही तो दीनता प्रगटती है, इच्छाओं के मिटने पर प्रभुता प्रगटती है।

फिर एक बार मंदिर जी के दर्शन करके पं. जी के पास पहुँचे तब पं. जी साहब ने पूछा–कहाँ से आ रहे हो ? तब हमने कहा–मंदिर जी में भगवान के दर्शन करके आ रहे हैं तब पं. जी साहब बोले–

'अच्छा दर्पण में खुद को देखते हो और मंदिर में भगवान को। भगवान भी दर्पण हैं, अपने को भगवान जैसा देखने के लिए।'

145. राग से भेदज्ञान

हमने पं. जी साहब से पूछा–राग से भेदज्ञान कैसे करें ? तब पं. जी साहब ने कहा–मार्बल के फर्श पर धूल बाहर से आयी है, बाहर ही है, बाहर ही देखने लायक है, इसीप्रकार राग, पर लक्ष्य पूर्वक होता है, स्वलक्ष्य पूर्वक राग नहीं हो सकता, पर के कारण राग नहीं हो सकता।

सर्वप्रथम रागादिक के अभाव के लिए अपने ज्ञानमात्र भाव को स्वीकारते हुए स्वाश्रय पूर्वक ही रागादिक अपने नहीं दिखते, अपने में नहीं दिखते।

146. अपने लायक

लगभग सन् 1994 की बात होगी। मैं और पं. जी साहब भोगांव में थे। रात्रि को तेज बारिश के कारण कमरे में बहुत पानी भर गया। मैंने कहा–पं. जी यह कमरा आपके लायक नहीं है तब पं. जी बोले–

''यह अच्छा हुआ कि यह अपने लायक नहीं है, नहीं तो अपन इसके लायक हो जाते। हमें तो सारा जगत अपने लायक नहीं दिखता। अगर अपने लायक जगत में कुछ भी दिखता है तो वहाँ जन्म–मरण करना पड़ेंगे, पंच–परावर्तन की शृंखला टूटेगी नहीं।''

147. जगत कुछ भी कहे

मैंने पं. जी साहब से कहा–आपके बारे में कुछ लोग अच्छी सोच नहीं रखते हैं। मैं चाहता हूँ उनकी लिस्ट बना लूँ, आप को दिखा दूँ।

पं. जी मुस्कराते हुए बोले–जितने समय में लिस्ट बनायेंगे उतने समय में अगर सामने वाले के परिणाम बदल गये तो ? जगत धर्मात्मा, आराधक जीवों को विवाद के घेरे में खड़ा कर देता है, इसमें आश्चर्य नहीं है।

श्रीमद् राजचन्द्र जी ने उपसर्ग कर्त्ता को मित्र और उपकारी माना है। हमारी समता से हमारी आध्यात्मिकता का पता लगता है कि सारा जगत हमारी निंदा-प्रशंसा करता है, इससे हमारे सुख-दुख का क्या संबंध है?

पं. जी साहब को किसी के गुण-दोषों की चर्चा करना बिल्कुल पसंद नहीं था। पं. जी साहब ने कहा कि-दूसरे के गुणों की चर्चा करने से अपने में हीनता आयेगी। दूसरे के दोषों की चर्चा करने से अपने को अहंकार आयेगा।

पं. जी साहब को विकथा या प्रमाद में समय खराब करना बिल्कुल पंसद नहीं था। न तो दूसरों की बुराई सुनते थे, न करते थे, न करने देते थे।

148. स्वतंत्रता

हमें गुरुदेवश्री की मंगल वाणी में स्वतंत्रता का उद्घोष सुनकर बहुत आनंद आता। हम पं. जी साहब से कहते- पं. जी साहब स्वतंत्रता की बात सुनकर हमारा रोम-रोम रोमांचित हो जाता है। द्रव्य-गुण-पर्याय की स्वतंत्रता, छः द्रव्यों की स्वतंत्रता, पर्याय का जन्म क्षण, पर्याय के षट् कारक, पर्याय की योग्यता।

तब पं. जी साहब ने हमसे कहा-बंधन में रहा हुआ पशु भी स्वतंत्रता पाकर प्रसन्न हो जाता है तो फिर हम तो मनुष्य हैं परन्तु सिर्फ स्वतंत्रता की बात सुनकर ही खुश मत होते रहना, **अपनी स्वतंत्र सत्ता का निर्णय करके उसमें समर्पित हो जाना।**

149. स्वभाव की अद्भुत महिमा

एक दिन दोपहर में मैं और दीदी आ. पं. जी के चौके के बाहर बैठे थे। पं. जी ने सहसा हमसे प्रश्न किया कि बताओ आत्मा दुखी कैसे होता है ?

मैंने भी सहज भाव से प्रचलित शैली में उत्तर दिया कि–जब ये जीव पर को अपना मानकर अपने अनुकूल परिणमन कराना चाहता है तब दुखी होता है।

यह सुनकर उन्होंने बड़ी सहजता से कहा कि–'**अरे! आत्मा दुखी होता ही नहीं, आत्मा तो सदाकाल सुख स्वरूप ही है। अपने को सुख स्वरूपी नहीं अनुभवना ही दुख है।**

150. तत्समय की योग्यता

उन दिनों पं. जी साहब गोरमी में विराजमान थे। हम दोनों बहिनें गोरमी गये थे (भिण्ड से साधर्मीजनों के साथ)।आ. पं. जी का स्वाध्याय होने के बाद पं. जी ने हम सभी लोगों को बुलवाया और पूछा कि– किससे आये ? (किस साधन से)–एक भाई ने उत्तर दिया कि–बस से आये।

तब पं. जी बोले कि–'बस से आये कि भावना से ? भावना तो बहुत दिनों से आने की थी तो भावना से आये कि योग्यता से ? ''**तत्समय की योग्यता ही कार्य का नियामक कारण है।**''

इसप्रकार बात ही बात में सैद्धान्तिक ज्ञान कराने का उनका बेजोड़ ज्ञान था।

151. कल्याण का मार्ग

आ. पं. जी साहब से किसी साधर्मी ने कहा कि–पं.जी साहब अब तो हमें अपना कल्याण करना है।

तब वे बोले कि–सुनो! कल्याण बातों से या चिंता से नहीं होता। कल्याण के लिये अपने को कल्याण स्वरूप देखो। अपने को कल्याण स्वरूप देखते रहना ही कल्याण होने की सम्यक् विधि है।

तत्त्व चिंतन के बिना, कल्याण स्वरूप आत्मा के आश्रय बिना आत्म कल्याण की चिंता भी मिथ्या है।

अपने जीवन में कल्याण करना है तो आगम के अनुसार विचार करने की आदत डालो।

आत्म कल्याण के लिये आपको जीवन समर्पित करना होगा।'

152. निकल रहे हैं

कुछ साधर्मी अमायन पधारे। चार दिन रुकने के बाद जब जाने लगे तब पुनः पं. जी साहब से मिलने आये। वे बोले कि–पं.जी साहब हम लोग अब निकल रहे हैं।

यह सुनते ही पं. जी बोले कि–निकल रहे हो कि फँसने जा रहे हो? इस रहस्यात्मक वाणी को सुनकर सब साधर्मीजन विस्मित हुये और उन्होंने निवृत्ति लेकर सत्समागम में रहने की भावना भायी।

153. हाथ की रेखा

एक साधर्मी भाई ने पं.जी साहब से कहा– पं. जी साहब हमारी ब्रहाचर्य लेने की बहुत भावना है, हमें शादी नहीं करना है लेकिन क्या करें? किसी ज्योतिषी ने बताया है कि तुम्हारी शादी अवश्य होगी, तुम्हारे हाथ की रेखाएँ बता रही हैं।

पं. जी साहब ने कहा–**भगवान की भक्ति और स्वरूप की दृष्टि से जब कर्म की रेखा बदल जाती है तो हाथ की रेखा नहीं बदल सकती।**

154. रोटी फूल रही है

एक समय हम चौके में रोटी बना रहे थे, उसी समय पं. जी आहार के लिए चौके में आये और बोले– रोटी अच्छी फूल रही है, हमें भी अदंर में प्रशंसा की प्रसन्नता हुई।

चेहरा भावों का दर्पण है। पं. जी साहब चेहरे से अंदर के भावों को पढ़ लेते हैं, तुरंत भेदज्ञान कराया–**रोटी के साथ में तुम मत फूल जाना, भेदज्ञान रखना–ये रोटी के कर्त्ता हम नहीं है। आटा स्वयं रोटी रूप परिणमित हुआ है।**

155. धर्म

पं. जी साहब से एक बार पूछा–इस पंचमकाल में चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्न सही होना हैं?

एक स्वप्न आया कि जीव युवावस्था में धर्म धारण करेंगे, वृद्धावस्था में धर्म छोड़ देंगे, सो कारण क्या है?

पं. जी साहब बोले–तत्त्वज्ञान का अभाव। जिन्होंने तत्त्व का, धर्म का, संयम का सच्चा स्वरूप समझा है, **जिन्हें संयम में आनंद लगेगा, वे संयम को क्यों छोड़ेंगे ?** जो धर्म और संयम के नाम पर बाह्य क्रिया में अटकने वाले और अनुकूलता में धर्म करने वाले, पापोदय जनित प्रतिकूलता आने पर विचलित हो जाते हैं धर्म (संयम) भावना प्रधान तो है परन्तु इसमें भावुकता को अवकाश नहीं। युवावस्था में मनमानी करेंगे, खींचतान की क्रियायें करेंगे, गंभीरता से तात्त्विक दृष्टि किये बिना, शरीर शिथिल रहने पर उपयोग चलायमान होवे तो इसमें क्या आश्चर्य। कारण के बिना कार्य नहीं होता।

156. ध्यान रखना

एक साधर्मी ने मिलकर वापिस जाते समय कहा– पं. जी साहब अपना ध्यान रखना।

पं. जी बोले–हाँ ! हमें बिल्कुल ध्यान है **कि ये शरीर मेरा नहीं है, मेरे परिणमित कराने से परिणमित नहीं होगा।**

''मेरो तो इक आतम, तामैं ममत जू कीनौ।''

157. असंगः मुक्तिवासः

एक बार की बात है। डॉ. वीरसागर जी ने उन्हें सत्संग की महिमा बताते हुए एक संस्कृत सूक्ति सुनाई–'सत्संगः स्वर्गवासः।' वे बहुत प्रसन्न हुये किन्तु थोड़ी ही देर में बोले–इसे पूरा भी करो।

पूछा–कैसे ? तो उन्होंने स्वयं ही पूरा करके सुनाया–'सत्संगः स्वर्गवासः, कुसंगः नरकवासः,असंगः मुक्तिवासः।'

अर्थात् 'सत्संग से स्वर्ग में वास होता है, कुसंग से नरक में वास होता है और असंग से मुक्ति में वास होता है।'

यह सुनकर बहुत आनंद आया। सोचने लगा–अनुभव की अपेक्षा शुभ को ठीक कहते हैं पर हमें वहीं न अटक कर शुद्ध की भी बात करना चाहिए।

158. परिष्कार या बहिष्कार ?

डॉ. वीरसागर जी दिल्ली से आये हुए थे उन्होंने अपना एक अत्यंत प्रिय सामाजिक सूत्र सुनाया कि–'**परिष्कार करो, बहिष्कार मत करो।**' पं. जी बहुत प्रसन्न हुये किन्तु थोड़ी ही देर में बोले–'इसे पूरा करो, तुम तो स्याद्वाद जानते हो।

डॉ. सा. ने पूछा–कैसे ?

तब वे स्वयं ही बात को पूरी करते हुए बोले–'**परिष्कार हेतु बहिष्कार भी आवश्यक है।** यदि हमारे पूर्वजों ने बहिष्कार नहीं किया होता तो आज हमें विशुद्ध मार्ग नहीं मिल पाता। संख्या घटना बुरी बात है पर उसकी गुणवत्ता गिरना और भी बुरी बात है।

शास्त्रों में मण्डन के साथ खण्डन को भी महत्व दिया गया है। दर्जी के पास सुई–धागा होना चाहिए पर साथ में कैंची भी।'

159. पाप को छोड़ना वीरता है

एक बार एक व्यक्ति ने कहा–हम तो पाप करते हैं, इसमें छुपाना क्या ?

पं. जी बोले–देखो भाई ! **पाप करना अपराध है, खुलकर (सबके सामने) करना निर्लज्जता है, पाप को स्वीकार करना समझदारी है और पाप को छोड़ना वीरता है।**

मुझे बहुत आनंद आया। आजकल बहुत से लोग खुलकर पाप करने को वीरता समझते हैं पर वीरता तो पाप को स्वीकार करके उसे छोड़ने का नाम है।

160. धर्म तो आनंद रूप है

एक बार एक भाई ने पूछा–धर्म तो आनंद रूप है फिर हमको धर्म करते समय आनंद क्यों नहीं आता?

पं. जी साहब बोले–**धर्म तो आनंद रूप है** परन्तु यदि तुम्हें आनंद नहीं आ रहा है तो या तो वह धर्म नहीं होगा अथवा तुम्हें कोई रोग होगा। जिसप्रकार मिश्री तो मीठी ही होती है पर यदि तुमको मीठी नहीं लग रही है तो या तो वह मिश्री नहीं होगी, मिश्री जैसा नमक आदि कुछ अन्य होगा अथवा तुमको पित्त ज्वर आदि कुछ हो रहा होगा। धर्म तो सदा, सर्वत्र आनंदमय ही है।

161. साता से रोग जाता है

पं. राजेन्द्र कुमार जी जबलपुर का स्वास्थ्य प्रतिकूल होने पर उन्हें ऐलोपेथी दवा का आश्रय लेना था परन्तु अंतर में गलत लगता रहता, उन्होंने आ. पं. जी के समक्ष अपनी समस्या रखी–बीमारी में एक वर्ष छः माह बीते, मुझे ऐलोपेथी दवाई का सेवन करना पड़ा, उसका प्रायश्चित चाहिए?

पं. जी बोले ही नहीं, मौन हो गए, अपना मुख भी दूसरी ओर कर लिया तब उन्होंने कहा–मुझसे गलती हुई, मुझे मार्गदर्शन प्रदान करें।

पं. जी बोले–रोग असाता के उदय से आता है, साता के उदय आने पर जाता है और आयुर्वेद में भी दवाएँ हैं तो पता लगाना था।

पुनः उसी दिन से पं. राजेन्द्र जी ने अंग्रेजी ऐलोपेथी दवाइयाँ खाने का त्याग कर दिया। बोले–आपकी प्रेरणा से मैं पाप से बच गया।

162. गणधर की गद्दी

पं. राजेन्द्र जी जबलपुर ने पं. जी साहब से पूछा–'मुझे पीठ में दर्द रहता है, कुर्सी पर बैठकर प्रवचन करना पड़ता है, क्या करूँ ?

पं. जी बोले–कुर्सी भोग का साधन है। यह गद्दी गणधर देव की है। संस्कृति की रक्षा करना अपना कर्तव्य है। हमारे द्वारा कोई गलत परम्परा की शुरुआत न हो जाए, विचारना।

163 स्वाध्याय बढ़ाओ।

आदरणीय पं. जी साहब से जब हमने पूछा–पं. जी साहब ! बहुत विचित्र गंदे भाव आते हैं, जो हम नहीं चाहते ? उन्होंने बहुत सहजता से चारों अनुयोग गर्भित सुन्दर समाधान करते हुए कहा कि–

1. वह भाव अध्रुव हैं और तुम ध्रुव हो।
2. उनको हेय जानो और उनकी निंदा करो।
3. स्वाध्याय बढ़ाओ और वैराग्य बढ़ाओ।
4. ज्ञायक का वेदन (अनुभवन) करो।

164. क्या खोया, क्या पाया ?

बात भिण्ड की है। हम सभी देवलाली शिविर से भिण्ड पहुँचे थे। रामपुर के कुछ भाई भी वहीं आ गये थे। वे सब एक साल की जयपुर में पढ़ाई कर चुके थे। सभी पं. जी साहब के पास बैठे थे। उन सभी की पढ़ाई की चर्चा हो रही थी तभी पं. जी साहब ने पूछा कि–

‘अच्छा ये बताओ, जयपुर में तुम लोगों ने एक साल में क्या खोया, क्या पाया ?

सभी भाई अपने-अपने अनुभवों को बताकर अपने विचार व्यक्त करने लगे। लगभग सभी ने यही कहा कि-‘अज्ञान खोया-ज्ञान पाया, बुरी आदतें छोड़ी-अच्छी बातें पायी आदि-आदि...।

पं.जी साहब बोले-‘ये सब तो ठीक है लेकिन तुम लोगों ने न कुछ खोया, न ही कुछ पाया।

सभी को बहुत आश्चर्य हुआ कि पं. जी साहब ये किस आधार पर कह रहे हैं तब पं. जी ने समझाया कि-

“भैया! तुम सदा काल पूर्ण हो, अनंत गुणों से भरे हो, अनंत ज्ञान के धारी हो और ये ज्ञान, सुख आदि गुण ऐसे हैं जिनका कभी अभाव नहीं होगा तो फिर तुम कुछ ग्रहण या त्याग कैसे कर सकते हो ? कैसे कुछ खो सकते हो और कैसे कुछ पा सकते हो ?”

165. सादगी

एक भाई ने बहुत ही आकर्षक एवं महंगी डायरी पं. जी साहब को भेंट की तब पं. जी साहब ने डायरी वापस करते हुए कहा कि-

“भैया! ये डायरी तो हमारे काम की नहीं है। हमें तो सादा कागज ही काफी हैं। ये डायरी तो हमारे हाथों में बनेगी ही नहीं।”

इस तरह पं. जी साहब ने निस्पृह भाव से अपने व्यवहारिक जीवन से हम बच्चों को बच्चों की भाषा में सादगी और अपरिग्रह का पाठ पढ़ा दिया।

166. निस्पृहता

प्रसंग महरौनी शिविर 1984 का है, जब पं. प्रकाशचन्द जी 'हितैषी' सम्पादक 'सन्मति-संदेश' से पं. जी साहब की पहली मुलाकात थी। पं. जी साहब के आचरण और ज्ञान को देखकर हितैषी जी बहुत प्रभावित हुये।

एक इंटरव्यू लिया। शिविर के बाद एक लेख लिखा, जिसमें उन्होंने शिविर के समाचार के साथ ही आ. पं. जी साहब के ज्ञान और आचरण की बात भी लिख दी लेकिन आश्चर्य की बात कि उसमें पं. जी साहब का नाम नहीं था।

बाद में पता लगा कि पं. जी साहब की सहमति न मिलने के कारण ही भावना होने पर भी हितैषी जी पं. जी साहब का नाम नहीं दे पाये।

नाम, प्रसिद्धि, पद, प्रतिष्ठा, चित्र आदि से अति विरक्त आ. पं. जी साहब बोले-

'समाज के पद एवं उपाधियों से सामाजिक प्रतिष्ठा तो शायद बढ़ भी सकती है, मान-सम्मान पाने की प्रवृत्ति को बढ़ावा भी मिल सकता है लेकिन आत्म साधना में ये सब हमेशा बाधक ही हैं और हमेशा बाधक ही रहेंगे। आत्मा का मार्ग तो अपद होने पर ही प्राप्त किया जा सकता है।'

जिन पर हमें गौरव है
एक प्रभावशाली व्यक्तित्त्व

श्रुत पंचमी के मंगल महोत्सव पर मुझे इस वर्ष एटा (उ.प्र.) की समाज ने बुलाया था। उन्होंने सात दिन का उत्सव मनाया था, उसी अवसर पर उसी जिले के एक नगर से पूर्व परिचित एक विद्वान पधारे थे, जिन्होंने अपना नाम-धाम एवं परिचय न देने का वचन ले लिया है; अतः मैं नाम-धाम तो नहीं दे रहा हूँ किन्तु उनका परिचय देने का लोभ संवरण नहीं कर सका।

वे एक बाल ब्रह्मचारी एवं उच्च कोटि के तत्त्वज्ञानी विद्वान हैं, जिनकी वाणी और जीवन में सत्य, शिव, सौन्दर्य के प्रत्यक्ष दर्शन हो जाते हैं। वे लोकेषणा और परिग्रह से बिल्कुल दूर रहते हैं जबकि अनेक व्रती नामधारी यश और परिग्रह जोड़ने में लगे हुए हैं।

आपकी सौम्य मुद्रा देखकर ही धर्म के साक्षात् दर्शन हो जाते हैं। जैसा कि सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ में कहा है– 'अवाग्विसर्गं वपुषा निरूपयतं साक्षात् मोक्षमार्गम्' अर्थात् बिना बोले ही मुनिराज मोक्षमार्ग का उपदेश दे रहे थे। यह रूप आप में देखने को मिलता है।

उनकी बोली में तो पुष्प वर्षा का आनन्द आने लगता है। आपका पूरा जीवन बड़ा ही संयमी, सात्विक, सरल और सहज देखने को मिलता है, जिसमें बनावट, अहंकार और आशा का लवलेश भी प्रवेश नहीं है।

तीव्र विरोधी भी आपके आध्यात्मिक प्रवचन से न ऊबता है और न उसमें मीन-मेख निकाल सकता है। आपके प्रवचनों का समाज पर आश्चर्य जनक प्रभाव पड़ता है। युवा समाज पर आपका अमिट प्रभाव पड़ता है, क्योंकि आप स्वयं एक आकर्षक युवा हैं।

आज देखा जाता है जरा-सी बोलने और लिखने की कला आ जाती है तो वह आसमान से ऊपर उड़ने लगता है। साधर्मी वात्सल्य तो आपमें देखते ही बनता है। वे जब कभी अस्वस्थ हो जाते हैं। मेरी मंगल कामना है कि स्वस्थ रहकर निरन्तर वे तत्त्व-प्रचार दीर्घ काल तक करते रहें। –सम्पादक

('सन्मति संदेश' जुलाई 1985 अंक में प्रकाशित सम्पादकीय लेख। सम्पादक पं. प्रकाशचन्द जी 'हितैषी' दिल्ली द्वारा लिखित।)

167. शिष्टता

प्रसंग भिण्ड का है, कुछ बच्चे पं. जी साहब के पास बैठे थे। मैं भी उस समय वहाँ उपस्थित था। चर्चा आई कि–माता–पिता की बात मानना या नहीं मानना ?

पं. जी साहब ने कहा– 'माता–पिता की आज्ञा मानना प्रत्येक बालक का कर्तव्य है लेकिन **जो बात धर्म के अनुकूल नहीं है तो फिर वह बात मानी जाये ये जरूरी नहीं।**

जैसे अगर कोई पिता अपने पुत्र से अभक्ष्य खाने को कहता है और पुत्र खाने से मना करता है तो उसका मना करना अशिष्टता नहीं कहलायेगी क्योंकि वह धर्म के अनुकूल आचरण में सावधान है।'

168. उपयोग की स्थिरता

एकांत स्थान में एक कमरे में आ. पं. जी साहब स्वाध्याय कर रहे थे। मैं भी उनके पास बैठा था। कमरे में एक चिड़िया बार–बार और तेज आवाज में शांति भंग कर रही थी।

मैंने पं. जी से कहा कि–देखो यह चिड़िया भी कितनी निर्भीक है, शायद इतनी निर्भयता इसे दूसरी जगह नहीं होती। सत्य तो ये है कि जहाँ ज्ञानी विराजते हों, वहाँ निर्भयता तो स्वाभाविक है।

मैंने कहा कि चिड़िया की आवाज से उपयोग तो अस्थिर हो ही रहा है।

तब पं. जी बोले कि–भैया ! उपयोग की अस्थिरता में चिड़िया का कोई दोष नहीं, दोष तो अपना ही है। मुनिराजों को देखो जो जंगल में आत्मा में मग्न हैं। जगंल में जहाँ एक ओर तो शान्ति है तो दूसरी ओर सैकड़ों पशु–पक्षियों की आवाजें, कोलाहल। जहाँ शेर जैसे खतरनाक पशुओं की दहाड़ मात्र से जीव सिहर उठें– ऐसे भयानक जंगल में दिगम्बर मुनिराज उपयोग की स्थिरता में मग्न हैं और हमें एक चिड़िया की आवाज मात्र से उपयोग चंचल हो रहा है। भैया! उपयोग की स्थिरता तो मुनिराजों से सीखो।

169. थाली धोकर पीना सिखाया

एक धार्मिक आयोजन में मैं उन्हीं के साथ धर्मशाला में रुका था तब भोजन संबंधी चर्चा में पं. जी ने यह बात कही कि–

थाली में भोजन छोड़ने पर अन्नकण के निमित्त से उसमें अनेक जीव हो जाते हैं क्योंकि अन्नकण छूटने पर बर्तन तुरन्त माँजते नहीं, अपने भोजन के बाद थाली धोकर पीना समझदारी का कार्य है।

मैंने पं. जी–से कहा कि–यह तो हमारे शहरों मे ग्लानि कारक रहता है और लोग इसे बैकवर्ड समझते हैं।

पं. जी साहब ने कहा–'भाई ! इसके निमित्त से जो जीव दया पलेगी और अन्नकण में जीवों की उत्पत्ति नहीं होगी उसके पुण्य की खुशी में बहुत अच्छा लगेगा।'

तब से मैंने थाली धोकर पीने की पद्धति प्रारम्भ कर दी।

170. अभिप्राय में अंतर

अमायन छात्रावास के छात्रों को एक बार मैंने णमोकार मंत्र लिखे हुए चाँदी के सिक्के भेंट किये। किसी कारण वश उसमें अशुद्धि रह गई और यह बात पं. जी के ज्ञान में आई तो उन्होंने कहा कि–

'इसे पुनः गलवा करके शुद्ध लिखवा करके मंगाओ, फिर देवेंगे। मैंने कहा– जब सुभौम चकवर्ती पानी में णमोकार मंत्र को मिटाने के भाव से नरक में गया फिर यदि हम चाँदी पर लिखा हुआ– यह णमोकार मंत्र मिटायेंगे तो हमें कितना पाप लगेगा ?

पं. जी बोले–हमारे अभिप्राय में अंतर है। हम णमोकार मंत्र की शुद्धता के अभिप्राय से उसमें लिखवा रहे हैं, अनादर का परिणाम नहीं है, इसलिए तुम इसे शुभ भाव व अच्छा कार्य ही जानो।

परिणाम और अभिप्राय का सुन्दर विश्लेषण आज भी हमें मार्गदर्शन देता है।

171. अनुद्दिष्ट दान

एक बार द्रोणगिरि में दशलक्षण पर्व के समय मैं आपके कक्ष में मिलने गया तब आपने मेरी दिनचर्या पूछी ? मैंने समस्त दिनचर्या बताकर कहा कि– 'रात्रि में स्वाध्याय कराने के पूर्व मैं पढ़कर तैयारी करता हूँ।

इस बात पर बाद में प्रवचन के बीच में वे बोले–'भाई ! जैसे आहार अनुद्दिष्ट होता है, वैसे ज्ञान दान भी अनुद्दिष्ट होता है। भोजन अपने लिए बनाया और कोई पात्र जीव मिल जाए तो उनको दान करें, वैसे ही स्वाध्याय अपने लिए करें और कोई पात्र जीव मिल जाए तो उनको भी सुना दें।'

चिंतन की गंभीरता व प्रयोजन परक दृष्टि से मन गद्गद् हो गया।

172. आत्मा का आनंद

एक बार अमायन में उनके कक्ष में आध्यात्मिक चर्चा के मध्य मैंने पूछा कि–'तत्त्वचिंतन करने पर आनंद आता है, वह कैसा आनंद है ?

उन्होंने कहा–''जैसे तालाब को छूकर आती हुई हवा से ठंडक मिलती है, वैसे ही यह स्वभाव को छूती हुई हवा है पर जैसे तृप्ति तो तालाब के पास जाकर जल पीने पर ही होती है, वैसे ही तृप्ति तो स्वभाव में लीन होने पर ही होती है।'

उन्होंने शास्त्र पढ़ने में, समझने में व समझाने में प्रयोजन पर दृष्टि रखना सिखाया। मैंने आत्मा पढ़ा था, उन्होंने देखना सिखाया।

173. ब्रह्मचर्य

सन् 1984 में महरौनी में आध्यात्मिक शिविर का आयोजन किया गया था, जिसमें अनेकों विद्वानों के साथ पं. जी साहब भी उपस्थित थे। शिविर में पं. जी साहब की मौसी आयीं हुईं थीं।

पं. जी साहब ब्रह्मचर्य के प्रति इतने सावधान रहते थे कि आपके आवासीय क्षेत्र में महिलाओं का आना जाना प्रतिबंधित था। शायद मौसी जी अनभिज्ञ थी, वे पं. जी साहब के कमरे में जाने के लिये सीढ़िया चढ़ने लगीं और शायद इस संकोच में कि ये तो पं. जी की मौसी जी हैं, किसी ने उन्हें रोका भी नहीं।

पर जैसे ही पं. जी को ज्ञात हुआ कि मौसी जी ऊपर आ रहीं हैं, उन्हें आने से रोक दिया और प्रवचन कक्ष में ही चर्चा करने को कहा।

बाद में पं. जी ने समझाया कि भैया! ब्रह्मचर्य व्रत लेना अलग बात है और उसे पालना अलग बात है। मर्यादा का पालन होना ही चाहिए।

धन्य है ऐसे बाल ब्रह्मचारी एवं अपने व्रत के प्रति उनकी सावधानी।

174 सच्चा मंत्र

आ. पं. जी साहब मौ में विराजमान थे। एक साधर्मी भाई ने पूछा–'निराकुल होने का सच्चा मंत्र क्या है ?'

पं.जी बोले–'**जितने निरपेक्ष, उतने सुखी। जितने सापेक्ष उतने दुखी।**' यही निराकुल का सच्चा मंत्र है। अगर व्यक्ति चाहे तो सुखी रह सकता है और चाहे तो दुखी।'

कम शब्दों में कितनी गम्भीर, बड़ी बात कह दी पं.जी साहब ने।

175. विवेक

महारौनी में शाम के समय पं. जी टहलने गये थे। साथ में एक भाई भी थे। अचानक रास्ते में एक पत्थर देखा तो इस भावना से किसी को चोट न लग जाये, उसे उठा कर एक तरफ फेंक दिया।

पं. जी पूरी घटना को देख रहे थे, फिर बोले–हम सब तो अच्छी भावना से पत्थर हटाते हैं लेकिन क्या इस तरह पत्थर फेंकना उचित है ? पता नहीं इस तरह पत्थर फेंकने से कितने जीव उसके नीचे आकर मरे होंगे या घायल हुए होंगे ? अतः लौकिक सहायता, परोपकार में भी विवेक की जरूरत है। बिना विवेक बहुत से परोपकार भी बेकार हो जाते हैं।

176. सूक्ष्म दृष्टि

सितंबर 1984 को, महारौनी ग्राम का प्रसंग है। एक विशिष्ट शास्त्री विद्वान के आग्रह पर विशाल पुस्तकालय के अवलोकनार्थ आ. पं. जी 'साढूमल' ग्राम गये और वहाँ उनके मार्मिक प्रवचन हुये और विशेष प्रभावना हुई पश्चात् पं. जी वापिस महरौनी आ गये।

एक पत्रिका के सम्पादक प्रतिष्ठित विद्वान को आ. पं. जी साहब का इतना सम्मान पचा नहीं और उन्होंने अपनी पत्रिका में पं. जी साहब के विरोध में द्वेष वश एक लेख प्रकाशित किया और उसमें निराधार बातें लिख दीं।

जब ये पत्र समाज के बीच आया तो आक्रोश होने लगा। महरौनी, साढूमल, बानपुर की समाज ने हस्ताक्षर कर निंदा और विरोध पत्र तैयार करवाये, उन्हें लगा कि यह सब देखकर पं. जी प्रसन्न होंगे।

सभी साधर्मी वह पत्र लेकर पं. जी साहब के पास पहुँचे। पं. जी ने वह पत्र देखा फिर थोड़ा मुस्कराये और बोले-

'इस सबकी तैयारी में कितने दिन लग गये?'

एक भाई-तीन-चार दिन।

पं. जी-'भैया! ये तीन-चार दिन जो तुम सबने इस कार्यवाही में खराब कर दिये अगर इतने दिनों तक इसी उपयोग एवं लगन से स्वाध्याय करते तो अपना हित होता।'

और उस आंदोलन को बढ़ने से रोक दिया।

सचमुच आ. पं. जी साहब की वाणी तो हमेशा निर्विवाद, निष्पक्ष, आगमानुकूल एवं अनुभव प्रधान रही है। पं.जी सा. के इस कथन को जीवन में उतारें कि–'सफाई मत दो, साफ रहो... ।'

पं. जी साहब जैसी सूक्ष्म दृष्टि मिलना तो मुश्किल ही है लेकिन उनकी जैसी दृष्टि की भावना एवं उसके फल से शिक्षा ग्रहण करें।

177. नामकरण संस्कार

आ. पं. जी साहब जब बानपुर में विराजते थे। एक दिन साधर्मीजनों में चर्चा हुई कि जैसे आ.ब्र. आत्मानंद जी बाबा जी का नामकरण संस्कार हुआ वैसे ही पं. जी साहब का भी होना चाहिए क्योंकि त्यागी द्विजन्मा होते हैं। विचार विमर्श करके एक नाम निश्चित किया–'ब्र. निजानंद महाराज'

शाम के स्वाध्याय के पश्चात् हम सब आ. पं. जी के पास पहुँचे। योग्य अभिवादन कर पं. जी से कहा–'हम सब आपका नामकरण संस्कार करने आये हैं तब पं. जी बोले–

'नाम सहित वेनाम,' 'शुद्धातम है मेरा नाम।'

शरीर का नाम तो परिवर्तनशील, उपाधिरूप है।

ऐसी उत्तम शिक्षा देकर भेदज्ञान का मंत्र सिखाया।

हम सब ने पं. जी के मना करने पर भी मंगलाष्टक का प्रथम छन्द और पंचपरमेष्ठी की जय बोलते हुए कहा कि–आज से श्रद्धेय पं. जी का नया नाम 'ब्र. निजानंद महाराज' होगा। उस समय आ. पं. जी की निस्पृहता देखने लायक थी। यद्यपि यह नाम प्रसिद्धि में नहीं आ पाया। हमारे मंदिर, वेदी आदि की प्रशस्ति में लिखा गया है।

178. औषधि दान

पं. जी को खांसी हो गई। आ.ब्र. आत्मानंद बाबाजी ने देखा और बोले–घी से परहेज करना, कम खाना और चले गए।

पं. जी साहब ने शाम को दूध में एक चम्मच घी डालकर पी लिया। दूसरे दिन कुछ आराम मिला।

बाबा जी आये, पूछा–अब खांसी कैसी है ?

पं. जी–कम है, अब कुछ ठीक सा लग रहा है।

बाबाजी ने नाड़ी देखी और बोले–देखा, मैंने कहा था–घी कम खाना, एक दिन में ही आराम मिल गया।

पं. जी हँस पड़े। बोले–बाबाजी ! मैंने दूध में घी डालकर पी लिया। दरअसल सूखी खाँसी थी, इसलिए चिकनाई की जरूरत थी और सच बात तो यह है कि औषधि से रोग दूर नहीं होता, औषधि दान से दूर होता है, पुण्य से दूर होता है सो खाँसी तो कम होनी ही थी।

बाबा जी बोले–तुम्हें तो सभी रोग की दवा का ज्ञान है।

पं. जी के श्री मुख से जब हमने यह प्रसंग सुना तो हम भी हंसी नहीं रोक पाये।

179. पर्याय का नम्बर

एक दिन छहढाला जी का पाठ करते समय पं.जी साहब से पूछा–'धर्मी सों गौ वच्छ प्रीति' क्यों लिखा ? गाय को तो प्रीति के संबंध में ज्ञान भी नहीं है।

पं. जी बोले–सुनो ! खनियाँधना में ब्र.आत्मानंद जी बाबा जी को एक ऑटो वाले से टक्कर लग गई। बाबा जी गिर पड़े, चोट आ गई। ऑटो वाला क्षमा मांगने लगा।

बाबा जी बोले–बेटा! तू भाग जा, नहीं तो लोग तुझे पकड़ लेंगे, हो सकता है मारें भी। वह चला गया।

शाम को ऑटो वाला बाबा जी के कमरे पर आया, हाथ जोड़कर बाबा जी के पैरों में गिर पड़ा, बोला–मैंने आपके जैसा महात्मा नहीं देखा। मुझे क्षमा कर दो।

बाबा जी बोले–तेरी कोई गलती नहीं और तुमने भी कोई जानकर ठोकर थोड़े ही दी है। व्यर्थ ही विवाद की स्थिति बनती।

पं.जी को सूचना मिली। देखने पहुँचे। बाबाजी कुछ पढ़ रहे थे। पं.जी समीप ही बैठ गए। बाबा जी ने जब देखा तो अति प्रसन्नता से–

अरे! तुम कब आए, बताया क्यों नहीं?

चलो मैं तुम्हें स्नान के लिए पानी दिये देता हूँ। तुम स्नानकर पूजन कर लो। मैं गाँव में जाकर भोजन का बोलकर आता हूँ।

पं. जी के रोकने पर भी अपनी लाठी उठाकर निकल गए।

शाम को पं. जी ने पूछा–बाबा जी! आपका एक्सीडेंट हुआ तब आपको क्या भाव आया?

बाबा जी बोले–अरे भैया! इस पर्याय का ऐसा ही नम्बर पड़ा था सो आ गया। जो होना है सो होना है।

पं. जी ने देखा–बाबा जी अपनी पीड़ा भूलकर साधर्मी मिलन का आनंद मना रहे थे।

पं. जी बोले–बाबा जी ने बहुत शास्त्र नहीं पढ़े थे। शास्त्रीय भाषा नहीं बोल सकते थे परन्तु उनके आचरण एवं भावों से ज्ञात होता था कि ज्यादा पढ़ाई की जरूरत नहीं, सच्ची समझ की जरूरत है।

''साधर्मी से अत्यंत प्रीति, निज धर्मी से अतिशय प्रीति।''

180. अहिंसा के प्रति सजगता

आ.पं. जी साहब साक्षात् धर्म की मूर्ति थे। निरन्तर भेदज्ञान पूर्वक आत्म-आराधना की प्रेरणा देना। व्यवहार धर्म व सदाचार का अपने जीवन में दृढ़ता पूर्वक पालन करना, आपकी दैनिक चर्या का अभिन्न अंग था।

सन् 2020 टीकमगढ़ में फाल्गुन की अष्टान्हिका का समय। म.प्र. में उस समय कांग्रेस सरकार के मुख्यमंत्री थे।

आ. पं. जी साहब को जानकारी मिली की सरकार बच्चों को मिड डे मील एवं आंगनबाड़ी के बच्चों के आहार में एक दिन अण्डा देने पर विचार कर रही है। उस बात को सुनकर आ. पं. जी साहब को बहुत खेद हुआ और इस बात को लेकर उन्होंने अनेक लोगों से सम्पर्क करके इसे लागू न होने के लिए प्रयत्न करने की प्रेरणा अवश्य देते रहते।

उसी समय पूर्व केन्द्रीय मंत्री श्री प्रदीप जी जैन 'आदित्य' भी वहाँ पधारे तब उनसे भी पं. जी ने इस संबंध में चर्चा करके इसे लागू न होने के लिए कहा।

पं. जी बोले-किसी भी कीमत पर यह गलत कार्य शुरू नहीं होना चाहिए। यदि यह लागू हो गया तो ऐसी परम्परा चल जाएगी जो सभी के लिए अनर्थकारी है।

आखिरकार म.प्र. सरकार का वह प्रस्ताव लागू नहीं हो पाया यहाँ तक कि वह सरकार ही चली गई।

181. समाज का भी कर्तव्य है

पं. जी का बाबा ब्र. आत्मानंद जी से मिलना हुआ।

उन्होंने समाज के लोगों से कहा–

बाबा जी तो बहुत सरल हैं लेकिन समाज का भी कुछ कर्तव्य है। इनकी वैयावृत्ति कर लो, इनका ध्यान रखो, यह एक महान आत्मा हैं। स्वयं पं. जी भी उनका ध्यान रखते, वैयावृत्ति करते–ऐसा दोनों का साधर्मी वात्सल्य एक धर्म पिता–पुत्र जैसा था।

एक बार बाबा जी के पुराने कपड़े देख पं. जी बोले–इन्हें बदल लो। मैं किसी से बोलकर नये कपड़े मंगा देता हूँ।

बाबा जी–' अपने त्याग का कभी रौब मत दिखाना। समाज से कुछ भी अपेक्षा नहीं रखना। यदि कपड़े भी फट जाएँ तो याचना नहीं करना, छाल या टाट ओड़ लेना। ऐसी निस्पृह वृत्ति के धनी थे आ. बाबा जी और बड़े पं. जी।

आ. पं. जी के पवित्र अंतरंग जीवन के साथ बाह्य जीवन से भी मितव्ययता, सादगी, अनुशासन, वात्सल्य, यत्नाचार, जिनधर्म का सावधानी एवं मर्यादा पूर्वक पालन करने की शिक्षा व प्रेरणा सदैव मिलती है। स्वयं के लिए कोई चाह नहीं थी परन्तु साधर्मी के लिए कोई कमी न रह जाए।

182. इन्द्र बनने में क्या धरा है

एक श्रेष्ठी भाई पं. जी साहब के वचनामृत का पान करने के लोभ से पधारे। प्रवचन सुनकर आशीर्वाद लेने कमरे पर आए।

बोले–पं. जी सा. आशीर्वाद दीजिए हम इन्द्र बन रहे हैं।

पं. जी–इन्द्र कैसे बनते हैं, ज्ञान है।

श्रेष्ठी–हमने पंचकल्याणक में इन्द्र की बोली ली है।

पं. जी–भाई! बोली लेने से, पैसों से इन्द्र नहीं बनते। इन्द्र बनते हैं पुण्य के परिणामों से, वह भी उत्कृष्ट पुण्य से और इन्द्र बनने में क्या धरा है। वह बनो जिसके लिए इन्द्र भी लालायित रहते हैं।

तीर्थंकर दीक्षा पालकी में विराजमान होते हैं तब इन्द्र अपना समस्त वैभव न्यौछावर करने को तैयार हो जाता है, इसलिए शुद्धात्म तत्त्व के आश्रय से निर्ग्रन्थ दशा की भावना भाओ।

श्रेष्ठी–अहो! धन्य है ऐसा चिंतन और तत्त्व प्ररूपणा (चरणों में नमते हुए)

भगवान के पंचकल्याण हमारे भी कल्याण में निमित्त हों।

'प्रभुवर का निर्वाण दिवस,

हो मेरा कल्याण दिवस।'

183. संयम रहना चाहिए

'कुसंग से निवृत्ति एवं असंग की भावना' का मंत्र सदैव देते और स्वयं भी इसके लिए प्रयत्न करते परन्तु सभी कार्य प्रयत्न से संभव नहीं होते, कर्मोदय भी कारण होता है।

साधर्मियों के विशेष आग्रह पर मात्र जानकारी लेने हेतु जबलपुर स्थित पूर्णायु जाना हुआ। सभी का कहना था कि वहाँ त्यागी, व्रती लोगों का उपचार होता है। शुद्ध-सात्विक औषधि का उपयोग किया जाता है। यहाँ तक कि त्यागियों के नियमानुसार भी औषधि तैयार की जाती है।

वहाँ जाकर देखने पर ज्ञात हुआ कि उस स्थल को एक चिकित्सालय का रूप दिया है।

मालिश-पंच कर्म आदि के लिए जब आपसे कहा गया तो साफ बोल दिया कि हम वहाँ रहकर इलाज नहीं करायेंगे और न ही उनके तेल आदि औषधि का उपयोग करेंगे। शरीर को रहना हो तो रहे अथवा न रहे। यहाँ तक कि अभक्ष्य (मांस-मदिरादि) सेवन करने वाले डॉ., तकनीशियन से भी शरीर को हाथ नहीं लगवायेंगे।

जबलपुर के कुछ साधर्मी भाइयों ने बहुत मेहनत करके योग्य औषधीय तेल-काढ़ा आदि तैयार कराया और डॉ. से परामर्श लेकर स्वयं ही मालिश आदि में तत्पर हुए।

धन्य! आपकी दृढ़ता-शरीर रहे, न रहे परंतु संयम रहना चाहिए।

184. आम का पार्सल

मैं भिण्ड में था। लगभग प्रति रविवार अवकाश होने से अमायन जाना होता था। उस समय मोबाइल फोन नहीं हुआ करते थे। फोन सुविधा भी सभी के घरों में नहीं थी। चिट्ठियों का युग था।

एक दिन मेरे पास एक पार्सल आया, जिस पर मेरे पते के साथ लिखा था–पं. जी साहब तक पहुँचा देना। मैंने देखा गुजरात से आया। पं. जी साहब के लिए कुछ होगा। मैंने संभालकर रख लिया। आठ दिन बाद रविवार था, सोचा जाऊँगा तब साथ ले जाऊँगा परन्तु पं. जी साहब का भिण्ड आगमन का कार्यक्रम हो रहा था, अतः रविवार को अमायन नहीं गया। लगभग दो–तीन दिन बाद पं. जी सा. भिण्ड पधारे, मैंने वह पार्सल लाकर देते हुए कहा कि दस दिन पहले यह पार्सल आपके नाम से आया था।

बोले–किसने भेजा ? क्या है इसमें ?

मैंने कहा–आपके नाम से था इसलिए खोलकर नहीं देखा।

बोले–खोलो, क्या है ?

खोलकर देखा–बहुत ही व्यवस्थित तरीके से तीन परत में छः हाफुस आम उसमें रखे थे परन्तु समय अधिक हो जाने के कारण वे सड़ गये थे।

पं. जी बोले–इतने दिन से क्यों नहीं खोले ?

मैंने कहा–उस पर आपका नाम लिखा था और भेजने वाले ने यह भी नहीं बताया कि उसमें आम हैं, अन्यथा मैं जल्दी भेज देता।

पं. जी बोले–इन आमों का ऐसा ही परिणमन था। इन आमों की जितनी कीमत होगी उससे अधिक इन्हें भेजने में राशि खर्च कर दी फिर भी मेरे काम नहीं आये।

पता नहीं कैसे धन से यह आम आये होंगे। जैसे धन से आये होंगे वैसा ही इनका परिणमन हुआ।

'जिस द्रव्य का, जिस क्षेत्र में, जिस काल में जो परिणमन वह सब निश्चित है। उगाने वाला भी नहीं खा सका, बेचने वाला भी नहीं खा सका, खरीदने वाला भी, पाने वाला भी और जिसके लिए संभाले वह भी नहीं।

185. व्यापार

राजस्थान से एक साधर्मी श्रेष्ठिवर पधारे,हाथ जोड़कर बोले–

'गुरुजी ! अब व्यापार बदलने का विचार है। आप आशीर्वाद दीजिए कि किसका व्यापार करूँ ? थोड़ा अच्छा मुनाफा हो।

पं. जी–अरे भाई ! हम तो परिग्रह की अनुमोदना भी नहीं करेंगे। हम तो कहेंगे परिग्रह का परिमाण करो। व्यापार की अनुमोदना नहीं, इस व्यापार को बंद करके रत्नत्रय का व्यापार करो। ये व्यापार हिंसादि पापों के कारण हैं तो पाप की अनुमोदना मैं नहीं कर सकता।

जीवन थोड़ा है, कमाने में ही चला जाएगा तो आराधना में कब लगेगा। कमाने के चक्कर में धर्म के लिए, अपने लिए समय ही नहीं।

श्रेष्ठिवर–पं.जी साहब ! फिर भी पेट के लिए, परिवार के लिए कुछ तो करना ही पड़ेगा।

पं. जी–भैया ! स्वामी जी कहा करते थे कि–

'जीवन तो छाछ–रोटी से भी चल जाएगा लेकिन धर्म मार्ग में नहीं लगे तो कमाने लायक भी नहीं रह जाओगे।

लोग छाछ–रोटी खाते थे, स्वस्थ रहते थे और धर्म ध्यान करते थे।

अब भोजन बिगड़ गया है, घर से छाछ चली गई है, सो स्वास्थ्य भी बिगड़ा है, धर्म ध्यान भी छूटा है।

पं. जी–कितनी एफ.डी. कर रखी हैं ?

श्रेष्ठिवर–लगभग पच्चीस करोड़ की होगीं लेकिन पता नहीं कब पूरी होंगीं ?

पं. जी–भैया एफ.डी. पूरी हों या न हों, ये जीवन अवश्य ही पूरा हो जाएगा। बड़ी बिडम्बना है– स्वयं खूब कमा रहे हैं, खूब खर्च कर रहे हैं परन्तु किसी साधर्मी को सौ रूपये की भी जरूरत आ जाए तो सब मिलकर चंदा कर लो।

अरे भाई ! "न धर्मो धार्मिकै बिना।" बात तो ऐसी हो कि साधर्मी के लिए जीवन भी देना पड़े तो मन में शंका न उपजे।

कमा–कमाकर रख जाओगे परन्तु भोग नहीं पाओगे और जिनके लिए कमाओगे वे भी भोग पायेंगे या नहीं, इसकी भी कोई गारंटी नहीं है।

"पूत कपूत तो का धन संचय।
पूत सपूत तो का धन संचय।।"

186. निर्यापक किसे बनायें ?

एकांत साधक, लोकेषणा से परे, जीवन से अधिक संयम की सुरक्षा में सजग आ.ब्र. रवीन्द्र जी 'आत्मन्' भौतिक शरीर छोड़ने से लगभग आठ दिन पूर्व एकाएक आपने कहा–'निर्यापक किसे बनायें ?'

मैंने सुना तो देखता रह गया। समीप बैठे साधर्मी मेरी ओर इशारा करते हुए बोले–अनिल व सोनू आपकी समाधि में सहयोगी रहेंगे, आप विकल्प क्यों रखते हो ?

उस वक्त मन ही मन विचारों में खो गया। स्वयं हर क्षण सावधान और साधक जीवों को मोक्षमार्ग की प्रेरणा देने वाले, सेवा और साधना में आपके बढ़े हुये चरण आज समाधि के लिये तत्पर हैं। समाधि किसी क्रिया का नाम नहीं फिर भी यत्नाचार और जागृत विवेक प्रबल कारण है, शांत परिणामों का नाम ही समाधि है-वश में इतना ही विचार कर सका।

दूसरे दिन भगवती आराधना जी ग्रन्थ में निर्यापक का स्वरूप देखा एवं सुबह आपको जिनदर्शन कराते समय पूछा-निर्यापक माने क्या होता है? बोले-खेवटिया।

मेरे मुँह से सहज ही निकल पड़ा-"खेवटिया तुम हो प्रभु, जय-जय जय जिनदेव"-सच्चे निर्यापक तो (वेदी की ओर इशारा करता हुआ बोला) आप ही हो, आपकी ही छत्रछाया में हम साथ खड़े हैं। किसकी ताकत थी जो इस पवित्र, निर्दोष भव्यात्मा का निर्यापक बन पाता। उसके बाद हरक्षण आपकी सतत् सावधानी, सिमटता हुआ उपयोग, न हर्ष, न विषाद, चित्त में एकाग्रता की झलक।

एक दिन पूर्व शरीर में विशेष अस्वस्थता नजर आने पर मेरे मुँह से एकाएक निकल पड़ा-"आप सभी विकल्पों से अपने मन को हटा लो। क्या होगा? यह भी मत सोचो। सब चलता रहेगा। आप कहा करते थे-बाबाजी आत्मानंद जी को-बस, एक अंगुली दिखाते हुए इशारा करते थे, इसी का चिंतन, मनन, ध्यान....." यह सुन आपका हृदय भावुक हो गया, आँखों में अश्रु छलके, मन परम शांत था, शुभ

विकल्प भी विलय होते हुये दिख रहे थे। चेहरे से वह सब झलक रहा था, वाणी भी भावों में विलीन हो चली थी।

''जो कुछ जहाँ, वहीं रहने दो, केवल दृष्टि मोड़ लो.........। के पथ पर आप बढ़ चुके थे।

187. अंतिम चरणों में......

वर्तमान शासन नायक वर्द्धमान स्वामी ने बहत्तर वर्ष की आयु में योग निरोध कर सांसारिक दशा का परित्याग किया। उन्हीं के पद चिन्हों के पथिक आ.ब्र. रवीन्द्र जी 'आत्मन्' वीर प्रभु की उसी दिव्य देशना को लगभग बहत्तर वर्ष की आयु तक इस वसुधा पर गुंजायमान करते रहे। जो निष्पक्ष, निर्विवाद, आगमोक्त, स्व-पर हितार्थ, प्रयोजन परक शैली में, साधक जीवों के जीवन का शिथिलाचार भी जिनके लिये असह्यनीय था।

वर्तमान में बढ़ रही चाहे सामाजिक विसंगति हो या धर्म क्षेत्र का अवर्णवाद, आप अंतिम समय तक एक कुशल कुम्भकार की तरह चोट करते रहे और सकारात्मक दृष्टिकोण से पद्य, गद्य, स्वाध्याय, प्रेरणा द्वारा सुन्दर घट का सृजन करने में सावधान थे।

वीरप्रभु के शासन के आप सजग प्रहरी थे। शारीरिक अस्वस्थता में जब कर और चरण ने भी अपनी स्वावलंबी चर्या से मुख मोड़ लिया, उस समय भी अपने संयम में आपने कोई समझौता नहीं किया अपितु शाश्वत तीर्थ श्री सम्मेदशिखर जी क्षेत्र की रेल और वायुयान की यात्रा तो संयम जीवन में स्वीकार ही नहीं की, साधारण

कार द्वारा सड़क मार्ग से स्थान-स्थान पर संयमित चर्या के साथ आपकी अंतरंग विशुद्धि व भक्ति के प्रभाव से सामान्य मेढ़क की तरह समवशरण को साक्षात् वंदन किया।

हजारों की संख्या में पद्य, पूजन, गाथा लिपिबद्ध की। अंतिम अवस्था में भी जब कर कलम पकड़ने में असमर्थ, भाषा अस्पष्ट फिर भी भाव शासन की सेवा में समर्पित, आपके ही द्वारा, आपके कर से अंतिम चरणों के भाव....।

करलो वासुपूज्य गुणगान, आई मंगल घड़ी।। टेक।।
गणधर, इन्द्रादिक करें, तुम चरणन की सेव।
महाभाग्य पाये सहज, हम देवन के देव।। 1।।
इन्द्रिय सुख दुःख रूप है, इन्द्रिय ज्ञान अज्ञान।
पर में सुख की कल्पना, तज पाओ सद्ज्ञान।। 2।।
धन्य घड़ी है आज की, देखे हम भगवान।
साक्षी में प्रभु आप ढिंग, पावें सम्यग्ज्ञान।। 3।।

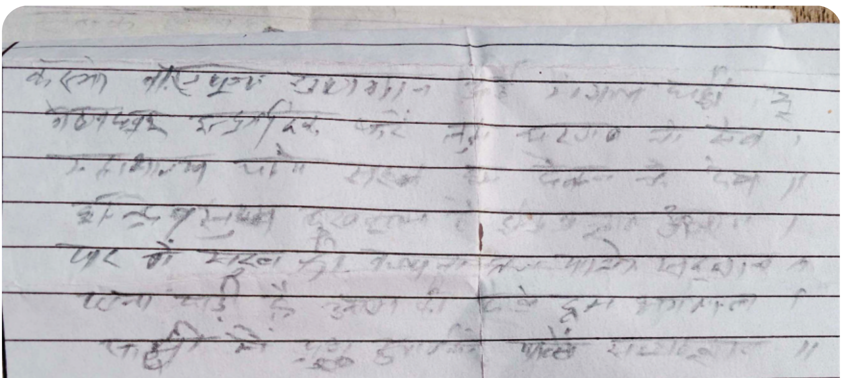

188. संयम-समाधि

शरीर भी धर्म साधना में सहयोगी है। इसे कुपथ्य, विपरीत विचारों से बिगाड़ो मत बुद्धि पूर्वक। फिर भी कर्मोदय से अस्वस्थता आ जाये तो संयम की सुरक्षा में सावधान रहना। शरीर का रहना, न रहना आयुकर्म के आधीन है, ऐसे दृष्टिकोंण के धनी आदरणीय ब्र. जी संयम ही जिनकी शारीरिक साधना का मुख्य बिन्दु रहा, अंतरंग शुद्धात्म सेवी उसकी बात तो हम क्या कर सकते हैं ?

बहिरंग शारीरिक स्वास्थ्य के जीवन में कई प्रसंग देखने में आये, एक-एक माह तक के लंघन हो गये, पर आप विचलित नहीं हुये। ऐलोपेथी चिकित्सा का आपने जीवन में कभी उपयोग नहीं किया। आयुर्वेद में भी रस, रसायन व कम्पनी में निर्मित पैक औषधि नहीं ली अपितु घर में ही तैयार की हुई काष्ठादि प्रासुक औषधि जैसे- चूर्ण, काढ़ा, तैल, घृत एवं मुख्य रूप से संतुलित पथ्य (दैनिक आहार) ही आपकी औषधि थी।

अंतिम अवस्था में शारीरिक प्रतिकूलता विशेष बनने पर वैद्य जी से परामर्श हुआ। बहिरंग उपचार के साथ-साथ काढ़ा आदि दिया जा रहा था, मैंने वैद्य जी से कहा-रोग की प्रचुरता दिख रही है, आप कोई ऐसी रोग शामक औषधि बतायें जो ब्र. जी के संयम के प्रतिकूल न हो व रोग शमन में सहायक बने। काफी विचार करने के पश्चात् आपने एक औषधि सुझायी, बोले-यह जहाँ तैयार होती है वह अपने जैन भाई की ही रसायन शाला है, आप इसका उपयोग कर सकते हैं। प्रसंग एक दिन पूर्व सायं चार बजे का था, ब्र. जी से मैंने पूछा-औषधि के सम्बन्ध में आपके मन में कोई विकल्प तो नहीं है, वैद्य जी सामने हैं आप पुष्टि कर लें। आप मुस्कुरा दिये परन्तु बोले-कुछ नहीं।

सुबह दर्शन, पूजन के पश्चात् काढ़ा लेकर आपके कक्ष में पहुँचा। आपका चित्त सहज, शांत था, मुद्रा पर भी अंतर के भाव सहज रूप से झलक रहे थे। न आकुलता, न अशांति, न हर्ष, न विषाद। सहजता, शांतता की एक अपूर्व झलक.... ।

वैद्य जी के द्वारा बताई औषधि मेरे हाथों में थी, मैंने कहा–काढ़े के साथ आप इसको ले लें। बोले–'आज अष्टमी है' संयम एवं विशुद्धि के धारक उस साधक के आगे मैं नतमस्तक था, कुछ भी न बोल सका, औषधि मैंने वापिस रख ली, काढ़ा आपने ले लिया। इस धर्म पर्व में आपने अपने को रक्षित कर लिया, संयम की अंतरंग परिधि खींच ली, जहाँ असंयमी भावों के पहुँचने को कहीं अवकाश नहीं था। इसी के साथ बढ़ गये आप अपने गंतव्य पर.... ।

सायंकाल की गौधूलि बेला में आपकी अनुपस्थिति में मात्र नश्वर शरीर दिख रहा था। साधर्मी भाइयों के मुख से जिनधुनि गुंजायमान थी।

जिस संयम को आपने जीवनभर सहेज कर रखा, उन पवित्र परमाणुओं का पिण्ड आकृति मात्र शेष थी.... ! उत्तम पथ पर बढ़े हुये.... आपको देख हर्षित होऊँ.... या सिर से सदा–सदा के लिये वृहद् हस्त, संरक्षक की अनुपस्थिति में विषाद करूँ... कुछ समझ नहीं पा रहा था–मुँख से जिन ध्वनि का पाठ व अंतर उदास था। जागृत विवेक ने सचेत किया–संयम से पुष्ट इन परमाणुओं को संयम की परिधि में ही रखकर सुरक्षित कर दो, व्यामोह ठीक नहीं।

शीघ्रातिशीघ्र प्रासुक ईंधन व घृत को परमाणु सुपुर्द कर दिये। अग्नि की एक चिंगारी दिखाई और देखते–देखते ही वे अवशेष भी अब शेष नहीं थे। नयनों में अश्रु थे। हृदय में आशा थी कि ऐसा व्यक्तित्व हमारे हृदय से नहीं जाये।

रजि.-2/09-10/B-113(1)

श्री वर्द्धमान न्यास (पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट)

अमायन, जिला-भिण्ड (म.प्र.) -४७७२२७

(रजि. AAJTS769D/03/15-16T-268/80G आयकर अधिनियम १९७१ की धारा 80-G के अन्तर्गत छूट की पात्रता है)

द्वारा संचालित गतिविधियाँ -

१. श्री वर्द्धमान दि. जैन विद्यार्थी गृह

२. श्री वर्द्धमान दि. जैन कन्या विद्यार्थी गृह

३. वर्द्धमान औषधालय- अमायन/मौ/ग्वालियर

४. वर्द्धमान पुस्तकालय

५. श्री वर्द्धमान श्रुत प्रभावना केन्द्र, ग्वालियर

६. सत्-साहित्य प्रकाशन

७. मेधावी/निर्धन छात्र एवं छात्राओं को छात्रवृत्ति

८. श्री वर्द्धमान प्राकृतिक चिकित्सा संस्थान

(आयुर्वेदिक एवं एक्यूप्रेशर)

(NDDY चिकित्सक एवं सहायक चिकित्सक - डिप्लोमा कोर्स)

श्री वर्द्धमान न्यास, अमायन (भिण्ड, म.प्र.)
द्वारा प्रकाशित, उपलब्ध सत्साहित्य-
(श्री ब्र. रवीन्द्र जी 'आत्मन्' विरचित)

क्र.	नाम	न्यौछावर राशि
1.	अमृत वचन (सजिल्द)	50/-
2.	स्वानुभव पत्रावलि (सजिल्द)	50/-
3.	जीवन पथ दर्शन (सजिल्द)	50/-
4.	जीवन पथ दर्शन (संक्षिप्त)	20/-
5.	लघु बोध कथाएँ	30/-
6.	जिनवर स्तवन (सजिल्द)	30/-
7.	स्वरूप-स्मरण (सजिल्द)	40/-
8.	जिन-भक्ति सिंधु (सजिल्द)	50/-
9.	वर्द्धमान पूजाञ्जलि (सजिल्द)	60/-
10.	सहज पाठ संग्रह (सजिल्द)	50/-
11.	वैराग्य पाठ संग्रह (सजिल्द)	40/-
12.	दृष्टांत-सिद्धांत (सजिल्द)	40/
13.	नीति वचन (सजिल्द)	50/-
14.	जिनवर-गुणगान (सजिल्द)	50/-
15.	श्री सम्मेदशिखर मण्डल विधान	20/-
16.	श्री रत्नत्रय विधान एवं चौंसठ ऋद्धि विधान	20/-
17.	श्री पंच बालयति तीर्थंकर मण्डल विधान	20/
18.	श्री चौबीस तीर्थंकर मण्डल विधान	30/
19.	उन्नति	30/-
20.	प्रेरणा	30/-
21.	प्रेरणा-दीप (ब्र. रवीन्द्र जी 'आत्मन्'-संस्मरण)	30/-
	अन्य -	
22.	अनुबंध-श्रीमती रूपवती 'किरण'	30/-
23.	पावन मन-श्रीमती रूपवती 'किरण'	30/
24.	जैन सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य (सजिल्द)-श्रीमती रूपवती 'किरण'	50/-
25.	वसंततिलका-श्रीमती रूपवती 'किरण'	25/-
26.	पूर्णिमा-श्री भगवत् जैन	30/-
27.	अमर विश्वास (कहानी संग्रह)	30/-
28.	विराग सरिता-श्रीमद् राजचंद्रजी के वचनामृत	30/-

सम्पर्क सूत्र- प्रवीण भैया, अमायन, मोबा.- 9926316216

नोट :- पी.डी.एफ. फाइल भी उपलब्ध है।